चरचा-शतक ।

नमः श्रीसर्वज्ञाय ।

स्वर्गीय कविवर द्यानतरायजीकृत

चरचा-शतक ।

सुगम हिन्दीटीकासहित ।

सम्पादक—

देवरी (सागर) निवासी नाथूराम प्रेमी ।

प्रकाशक—

श्रीजैनग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बम्बई ।

निर्णयसागर प्रेस बम्बईमें मुद्रित ।

श्रीवीर नि० सं० २४३९

मई, सन् १९१३

प्रथमावृत्ति ।]

[मूल्य ।॥)

निवेदन।

चरचाशतक बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ है। जैन समाजमें इसका खूब प्रचार है। सूत्र ग्रन्थोंके समान इसमें थोड़ेमें बहुत विषय कहे गये हैं। इस ग्रन्थको अच्छी तरह पढ़नेसे जैन शास्त्रोंमें अच्छी गति हो जाती है। भाषामें इसकी कई टीकायें हैं, परन्तु उनमें एक तो बहुतसी त्रुटियां हैं और दूसरे उनकी रचना वर्तमान पद्धतिके अनुसार नहीं है इसलिए आज कलके लोग उनसे पूरा पूरा लाभ नहीं उठा सकते। इसलिए मैंने यह नवीन प्रयत्न किया है। आशा है कि इसे पाठक पसन्द करेंगे और इसका स्वाध्याय करके मेरे परिश्रमको सफल करेंगे।

ग्रन्थके मूलपाठके संशोधनमें बहुत सावधानी रक्खी गई है और ग्रन्थकर्त्ताकी मूलभाषाको ज्योंकी त्यों रखनेकी चेष्टा की गई है।

लगभग ४० पद्योंकी टीकाका संशोधन जैनसमाजके एक सुप्रसिद्ध विद्वानके द्वारा कराया गया है और शेषका पंडित वंशीधरजी शास्त्रीसे। गढ़ाकोटा निवासी श्रीयुक्त पं० दरयावसिंहजी सोधियाने भी एक बार इस टीकाको आद्योपान्त देखनेकी और संशोधन करनेकी कृपा दिखलाई है। उक्त तीनों ही विद्वानोंकी कृपासे मैं समझता हूँ इस टीकामें बहुत ही कम भूलें रही होंगीं और इसलिए मैं उक्त तीनों महानुभावोंका हृदयसे आभार मानता हूं।

प्रमादके वश जो कहीं कहीं भूलें रह गई थीं वे प्रारम्भमें शुद्धिपत्र लगाकर ठीक कर दी गई हैं। ग्रन्थका स्वाध्याय करनेके पहले पाठकोंको चाहिए कि उन्हें यथास्थान सुधार लेवें।

हीराबाग, बम्बई
७—४—१९१३

नाथूराम प्रेमी।

विषय-सूची।

पद्योंकी अकारादि क्रमसे सूची।

शुद्धाशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
२	२	अच्छी तरहसे	पूरा पूरा
७	१५	मैं नमौं	मैं नमौं
८	२३	सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति, एकत्व-वितर्कवीचार	एकत्ववितर्कवीचार, सूक्ष्म-क्रियाप्रतिपाति
१५	४	वर्गमूल क च रेखा	वर्गमूल $७\frac{३७}{६०}$ क च रेखा
१५	५,	दोनोंका जुदा जुदा वर्गमूल नहीं निकालकर इकट्ठा करके निकालनेसे $१५\frac{}{३०}$ हुआ ।	दोनोंको इकट्ठा करनेसे $१५\frac{७}{३०}$ हुआ ।
१५	८	निकालनेसे एकत्र ६५ का वर्गमूल	निकालनेसे $\sqrt{१६\frac{१}{४}}\sqrt{१६\frac{१}{४}}+\sqrt{१६\frac{१}{४}}\sqrt{१६\frac{१}{४}}$ का वर्गमूल
१६	२६	यदि पहिले आयु न बँध पाई हो तो मरणसे अन्तर्मुहूर्त पहले तो अवश्य बँध जाती है ।	यदि इनमें भी आयु न बँध पाई हो तो भुज्यमान आयुमें आवलीके असंख्यातवें भाग काल बाकी रहनेके पहले अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर भीतर किसी समयमें तो अवश्य ही बँध जाती है ।
२७	१	हड्डियां होती	हड्डियां कीली वेष्ठनादि होती
२३	३	देवियां नहीं हैं, इसलिये	देवियां नहीं है और कषायकी बहुत मन्दता है इसलिये
३	५	रुकता है	रुलता है ।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
४१	१८	दुसर्ग	दुर्भग
४६	१९	स्थितिके अंकोंका प्रमाण १५०है।	संख्या १५० अंक प्रमाण है । इससे अधिक संख्याकी संज्ञा असंख्यात है ।
५२	१०	आठ अंस	आउ अंस
५३	१२	त्रिभागमें ही होता ह ।	त्रिभागमें या अन्तसमयमें होता है ।
५५	९	अपर्याप्त ये दो	अपर्याप्त (निवृत्ति अपर्याप्त) ये दो
५९	१८	इन गुणस्थानोंमें	इन गुणस्थानोंसे
५९	२०	–स्थान हो जाय ।	–स्थान हो जाय परन्तु इन गुणस्थानोंमें मरण नहीं होता ।
६०	३	बारहवेंके अन्त तथा	बारहवेंके विनाश तथा
७३	१३	चौदहवें गुणस्थानके अन्तमें जब आठ समय बाकी रह जाते हैं	चौदहवें गुणस्थानके पूर्ण होनेमें जब अन्तर्मुहूर्त काल बाकी रह जाता है
७३	१८,	जब कि जीव सुमेरुपर्वतके आठ मध्यप्रदेशोंपर आत्माके आठ मध्य प्रदेश स्थापित करकेबाकीके प्रदेशोंको तिरछे शरीराकार रखता हुआ ऊपर नीचेकी	जब कि जीव आत्मप्रदेशोंको शरीरके विस्तारके प्रमाण ऊपर नीचेकी
७४	५	प्रदेश उत्तर दक्षिणकी तरफसे शरीराकार बने रहकर पूर्व पश्चिम	प्रदेश दंडके बराबर चौड़ाई लिये हुए हो यदि पूर्वको मुंह हो तो दक्षिण उत्तरको और उत्तरको मुंह हो तो पूर्व पश्चिम–

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
७७	१४	(अज्ञानका वावलेपनका)	(वावलेपनका)
८१	१	इनमेंसे अनादि मिथ्यादृष्टी जीवके सम्यग्मिथ्यात्व	इनमेंसे सम्यग्मिथ्यात्व
९१	४	लब्ध्यपर्याप्तक इतर निगोद जीवोंके	लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंके
१०९	४	बारहवें गुणस्थान	तेरहवें गुणस्थान
११२	५	आठ प्रदेश हैं। उनसे	आठ प्रदेश हैं। उन आठ प्रदेशोंको अपने शरीरके आठ मध्य प्रदेश बनाकर जघन्य अवगाहनाको धारण करके उत्पन्न हो तथा उसी अवगाहनाको लेकर जितने उसके आत्मप्रदेश हैं उतनी ही वार जन्म मरण करे। इसके वाद उनसे
१२१	७	गुणस्थानमें	गुणस्थानसे
१२१	७	तो उस समय मरणसे पहले ही ऊपरसे गिरकर एक वार तो चौथे गुणस्थानमें आता है। अर्थात् अन्तसमय	तो चौथे गुणस्थानमें आता है अर्थात् मरणसमय
१२१	१०	और फिर देवगतिको	और देवगतिको
१२५	१६	कार्माण योगकी व्युच्छित्ति	कार्माणयोग
१२५	१८	होती है	होते हैं।
१२९	१६	सर्वाथसिद्धि	सर्वार्थसिद्धि
१३२	३	चौदह गुणस्थानोंमें चौंतीस भाव।	चौदह गुणस्थानोंमें चौंतीस भावोंकी व्युच्छित्ति।

पृष्ठ.	पंक्ति.	अशुद्ध.	शुद्ध.
१३६	११	दान, लाभ, भोग, उपभोग,	क्षायिक दान-लाभ-भोग-उपभोग
१३६	१४	दान, लाभ, भोग, उपभोग,	क्षायोपशमिक दान-लाभ-भोग-उपभोग---
१३७	११	औदारिक मिश्र, आहारकमिश्र	औदारिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र।
१४४	७	बिच्छू छिपकली आदि	बिच्छू आदि।

श्रीवीतरागाय नमः

स्व० कविवर द्यानतरायजीकृत

चरचाशतक ।

सुगमटीकासहित

मंगलाचरण ।

पंचपरमेष्ठीकी स्तुति, छप्पय ।

जय सरवग्य अलोक लोक इक उडुवत देखैं ।
हस्तामल ज्यों हाथलीक ज्यों, सरव विसेखैं ॥
छहों दरव गुन परज, काल त्रय वर्तमान सम ।
दर्पण जेम प्रकास, नास मल कर्म महातम ॥
परमेठी पांचौं विघनहर,
मंगलकारी लोकमैं ।
मन वचन काय सिर लाय भुवि,
आनँदसौं द्यौं धोक मैं ॥ १ ॥

अर्थ—वे सर्वज्ञ भगवान् जयवंत हों, जो कि लोक सहित अलोकको आकाशके एक तारेके समान, हथेली-

पर रक्खे हुए एक आँवलेके समान और हाथकी रेखा-ओंके समान अच्छी तरहसे देखते हैं; जीवादि[1] छहों द्रव्योंके भूत भविष्यत् वर्तमानकाल सम्बन्धी अनन्तानन्त गुणों और अनन्तानन्त पर्यायोंको वर्तमानकी नाईं अपने ज्ञानमें इस प्रकारसे प्रकाशित करते हैं, जिस तरह दर्पण (आरसी) में सब घटपटादि पदार्थ एक साथ प्रकाशित होते हैं और जिन्होंने मलरूप महातम अर्थात् कर्मोंका महान अन्धकार अथवा माहात्म्य नष्ट कर दिया है[2]। इस लोकमें अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु ये पांचों परमेष्ठी[3] विघ्नोंके हरण करनेवाले तथा मंगलके करनेवाले हैं। इसलिये उन्हें मन वचन कायसे पृथ्वीपर मस्तक लगाकर आनन्दपूर्वक धोक देता हूं अर्थात् प्रणाम करता हूं।

इस छप्पयके पहले चार चरणोंमें सर्वज्ञ देवकी प्रशंसा की गई है और शेष दोमें समुच्चयरूप पांचों परमेष्ठीको नमस्कार किया गया है।

श्रीनेमिनाथजीकी स्तुति।

वंदौं नेमि जिनंद चंद, सबकौं सुखदाई।
बल नारायणवंदि, मुकुटमणि सोभा पाई॥

---

१ जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। २ 'दर्पण जेम प्रकास नास मल कर्म महातम'का अर्थ इस तरहसे भी होता है कि, जिस तरह दर्पणके ऊपरका मल निकल जानेसे उसमें सब पदार्थ झलकते हैं उसी प्रकारसे कर्म मलके नाश हो जानेका ही यह माहात्म्य है कि, सर्वज्ञके ज्ञानमें छहों द्रव्य झलकते हैं। ३ परमपदमें जो तिष्ठें, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

व्यंतर इंद्र बतीस, भवन चालीसौं आवैं।
रवि ससि चक्री सिंह, सुरग चौवीसौं ध्यावैं॥
सब देवनके सिरदेव जिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हालपै, गुण अनंत समुदाय हौ* २

---

* चरचाशतकपर हरजीमल्लराय पानीपतनिवासीकी जो टब्बारूप टीका है, उसमें दूसरे छप्पयके आगे यह एक छप्पय और भी मिलता है, परन्तु एक तो मूल पुस्तकोंमें यह कहीं मिलता नहीं है, दूसरे इसके न केवल अन्तके दो चरण ही दूसरे छप्पय के समान हैं, किन्तु भाव भी प्राय एकसा है। इस लिये हमारी समझमें यह प्रक्षिप्त है। अनुमान होता है कि, कविने पहले इसे बनाया होगा, और पीछे संशोधनके समय पसन्द न आनेसे अपनी प्रतिपरसे इसको काटकर उसके स्थानमें दूसरा लिख दिया होगा। पीछे नकल करनेवालोंने कटा हुआ समझ कर दोनोंको लिख लिया होगा। उस छप्पयको हम यहां अर्थसहित लिख देते हैं:—

इंद फनिंद नरिंद, पूजि नमि भक्ति बढ़ावैं।
बलि नारायण मुकटवंदि, पद सोभा पावैं॥
विन जानै जिय भमै, जानि छिन सुरग बसावै।
ध्यान आन रिधिवान, अमरपद आप लहावै॥
सब देवनके सिरदेव जिन, सुगुरुनिके गुरुराय हौ।
हूजे दयाल मम हाल पै, गुन अनंत समुदाय हौ॥

अर्थ—हे नेमिनाथ भगवन्! आपको इंद्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्र पूज करके तथा नमस्कार करके अपनी भक्तिको बढ़ाते हैं, और बलभद्र तथा कृष्ण नारायणके मुकुट आपके चरणोंकी वन्दना करके शोभा पाते हैं। आपको जाने विना यह जीव इस जन्ममरणरूप संसारमें भ्रमण करता रहता है, जानकरके वा श्रद्धान करके क्षणभरमें स्वर्ग पहुंच सकता है, और ध्यान करके इन्द्र चक्रवर्ती आदिकी ऋद्धियां प्राप्त करके आप स्वयं अमरपद वा मोक्षपदको प्राप्त होता है। आप सब देवोंके सिरताज देव हैं, सुगुरुओंके महान गुरु हैं और अनंत गुणोंके समुदाय हैं। मेरे हालपर दयाल हूजिये अर्थात् मुझे दुखी देखकर दया कीजिये।

अर्थ—मैं उन बीसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथ भगवानको नमस्कार करता हूं, जो चन्द्रमाके समान सब जीवोंको सुखके देनेवाले हैं, और जिनकी वन्दना करके वलभद्र[1] और श्रीकृष्णनारायणके[2] मुकुटोंमें लगी हुई मणियोंने अतिशय शोभा पाई है अर्थात् जिस समय वलनारायण नमस्कार करनेके लिये अपना मस्तक नवाते थे, उस समय उनके मुकुटोंके रत्न भगवानके चरणोंके नखोंकी कांतिसे और भी अधिक चमकने लगते थे, जिनका व्यंतर देवोंके[3] वत्तीस, भवनवासियोंके[4] चालीस, ज्योतिष्कोंके दो सूर्य[5] चन्द्र, मनुष्योंका एक चक्रवर्ती, पशुओंका एक सिंह और कल्पस्वर्गोंके[6] चौवीस इस प्रकार सब मिलाकर सौ इन्द्र ध्यान करते हैं, और इसलिये हे जिनदेव आप सब देवोंके सिरदेव अर्थात् शिरोमणि देव हैं, गणधरादि सुगुरुओंके गुरुराज हैं, और अनन्तानन्त गुणोंके समूहरूप हैं। आप मेरे हालपर अर्थात् संसार भ्रमणकी दुर्दशापर दयालु हूजिये—मुझे कृपाकरके इस दुःखसे छुड़ा दीजिये।

---

१ नववें पद्म नामक वलभद्र। २ नववें नारायण। ३ व्यन्तर आठ प्रकार के हैं और उनके प्रत्येक भेदमें दो २ इन्द्र तथा दो २ प्रतीन्द्र हैं, इसतरह वत्तीस व्यन्तरेन्द्र। ४ भवनवासी दश प्रकारके हैं और प्रत्येकमें दो २ इन्द्र तथा प्रतीन्द्र हैं। ५ सूर्य प्रतीन्द्र है और चन्द्र इन्द्र है। ६ पहिले चार स्वर्गोंमें चार इन्द्र और चार प्रतीन्द्र=८, पांचवें छठेमें १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, सातवें आठवेंमें १ इन्द्र, १ प्रतीन्द्र=२, नववेंसे वारवें तकमें २ इन्द्र, २ प्रतीन्द्र =४, तेरहवेंसे सोलहवेंतकमें ४ इन्द्र ४ प्रतीन्द्र=८, इस तरह १६ स्वर्गोंमें २४ इन्द्र हैं।

अकृत्रिम चैत्यालयोंकी प्रतिमाओंकी स्तुति ।

बन्दौं आठ किरोर, लाख छप्पन सत्तानौ ।
सहस च्यारि सौ असी, एक जिनमंदिर जानौ ॥
नव सै पचिस कोरि, लाख त्रेपन सत्ताइस ।
बंदौं प्रतिमा सर्व, सहस नौ सौ अड़तालिस ॥
व्यंतर जोतिक अगणित सकल,
चैत्यालय प्रतिमा नमौं ।
आनंदकार दुखहार सब,
फेरि नहीं भववन भमौं ॥ ३ ॥

अर्थ—मैं तीनों लोकोंके आठ करोड़, छप्पन लाख, सत्तावन हजार, चारसौ इक्यासी ८५६५७४८१ अकृत्रिम जिन मंदिरोंकी वन्दना करता हूं और फिर उन जिन मन्दिरोंमें की नौसौ पचीस करोड़ त्रेपन लाख सत्ताइस हजार नौसौ अड़तालीस ९२५५३२७९४८ प्रतिमाओंकी वन्दना करता हूं। इनके सिवाय व्यन्तर भवनोंमें तथा ज्योतिषियोंके विमानोंमें जो असंख्यात चैत्यालय और असंख्यात प्रतिमाएं हैं, उन्हें नमस्कार करता हूं, जिससे फिर इस संसाररूपी वनमें भ्रमण नहीं करना पड़े। वे सब मन्दिर और प्रतिमाएं आनन्दकी करनेवाली और दुःखोंकी हरनेवाली हैं।

सिद्धस्तुति।

लोकईस तनुवात सीस, जगदीस विराजैं ।
एकरूप वसुरूप, गुन अनंतातम छाजैं ॥

अस्ति वस्तु परमेय, अगुरु लघु दरव प्रदेसी।
चेतन अमूरतीक, आठ गुन अमल सुदेसी।
उतकृष्ट जघन अवगाह,
पद्मासन खरगासन लसैं।
सब व्यापक लोक अलोकविध,
नमौं सिद्ध भवभय नसैं ॥ ४ ॥

अर्थ—सिद्ध भगवान् तीनलोकके ईश्वर हैं, व्यवहार-नयसे तनुवातवलयके शीसपर अर्थात् अन्तमें जगतके ईश्वररूपमें विराजमान हैं, द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षा एक शुद्ध चैतन्यस्वरूप हैं, व्यवहार नयकी अपेक्षा सम्यक्-ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहना, अगुरु लघु, और अव्याबाध इन आठ विशेष गुणरूप हैं, तथा अनन्तानन्त गुणोंसे शोभायमान हैं, अस्तित्व[1], वस्तुत्व[2] प्रमेयत्व[3], अगुरुलघुत्व[4], द्रव्यत्व[5], प्रदेशवत्व[6], चेतनत्व, और

---

१ अस्तित्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यका कभी नाश नहीं हो। २ वस्तुत्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्यमें अर्थक्रियाकारित्व होता है। जैसे घड़ेकी अर्थक्रिया जलधारण है। इस जलधारण क्रियाको घड़ेका वस्तुत्व कहेंगे। ३ प्रमेयत्व—जिस शक्तिके निमित्तसे द्रव्य किसी भी ज्ञानका विषय होता है। ४ अगुरुलघुत्व—जिसके निमित्तसे द्रव्यका द्रव्यत्व बना रहता है अर्थात्, एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं हो जाता है-एक गुण दूसरे गुण-रूप नहीं हो जाता है और एक द्रव्यके अनन्त गुण विखरकर जुदे २ नहीं हो जाते हैं। ५ द्रव्यत्व—जिसके योगसे द्रव्यकी पर्यायें हमेशा पलटती रहती हैं। ६ प्रदेशवत्व—जिसके योगसे द्रव्यका कोई न कोई आकार अवश्य रहता है।

अमूर्तत्व इन आठ निर्मल सामान्य गुणोंसहित हैं, निश्चयनयकी अपेक्षासे अपने ही प्रदेशोंमें विराजमान हैं, उत्कृष्ट सवा पांच सौ धनुषकी और जघन्य साढ़े तीन हाथकी अवगाहनावाले हैं, खड्गासन या पद्मासनसे शोभित रहते हैं, और लोक तथा अलोकके समस्त पदार्थोंको जानते हैं। ऐसे सिद्धोंको मैं नमस्कार करता हूं, जिससे मुझे भवभ्रमणका भय न रहे अर्थात् मुझे फिर संसारमें रुलना न पड़े।

आचार्य उपाध्याय सर्व साधुकी स्तुति।

आचारज उवझाय, साधु तीनौं मन ध्याऊं।
गुन छतीस पचीस वीस, अरु आठ मनाऊं॥
तीनौंकौ पद साध, मुकतिकौ मारग साधैं।
भवतनभोग विराग, राग सिव ध्यान अराधैं॥
गुनसागर अविचल मेरु सम, धीरजसौं परिसह सहै
मैं नमौं पाय जुग लाय मन, मेरौ जिय वांछित लहै ५

अर्थ—जिनके क्रमसे छत्तीस, पैंचीस और अट्ठाईस गुण

---

१ अमूर्त्तत्व—पुद्गलके स्पर्श आदि चार गुणोंसे रहित। २ सिद्धान्तमें ८४ आसन कहे हैं, परन्तु मोक्ष केवल खड्गासन और पद्मासनसे ही होता है। ३ बारह तप, छह आवश्यक, पांच आचार, दश धर्म और तीन गुप्ति, सब छत्तीस गुण आचार्योंके होते हैं। ४ ग्यारह अंग और चौदह पूर्वका जानना ये पचीस गुण उपाध्यायोंके हैं। ५ पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रियोंका निरोध, छह आवश्यक क्रियाएँ, वालोंका उखाड़ना, वस्त्रोंका त्याग (नग्नता), स्नानत्याग, दन्तधावनत्याग, भूमिपर सोना, और खड़े २ एक वार अल्प आहार लेना; ये अट्ठाईस मूल गुण साधुओंके हैं।

हैं, मैं उन आचार्य, उपाध्याय और साधुओंका मनमें ध्यान करता हूं और उन्हें मनाऊं हूं अर्थात् उनकी सत्कार पूजनादि करता हूं। इन तीनोंको साधुका पद है अर्थात् आचार्य उपाध्याय और साधु ये सब साधु कहलाते हैं। क्योंकि ये रत्नत्रयरूप मोक्षके मार्गको साधते हैं। ये संसार, देह और पंचेन्द्रियके विषयोंसे तो अतिशय विरक्त रहते हैं, परन्तु मोक्षसे राग रखते हैं। ध्यानकी अराधना करते हैं, गुणोंके सागर होते हैं, सुमेरु पर्वतके समान अविचल (अचल) होते हैं, और धीरजके साथ बड़ी बड़ी परीसहोंका सहन करते हैं। मैं उनके चरणोंको मन लगाकर नमस्कार करता हूं, जिससे मेरा मोक्षप्राप्तिरूप मनोरथ सफल हो।

अलोक और लोकका स्वरूप।

अचल अनादि अनंत, अकृत अनमिट अखंड सब
अमल अजीव अरूप, पंच नहिं इक अलोक नभ ॥
निराकार अविकार, अनंत प्रदेस विराजै।
सुद्ध सुगुन अवगाह, दसों दिस अंत न पाजै ॥

---

१ दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, और वीर्याचार इन पांच आचारोंको जो आप आचरण करें और दूसरोंको आचरण करावें, उन्हें आचार्य कहते हैं। २ जो ग्यारह अंग चौदह पूर्व आप पढ़ें तथा औरोंको पढ़ावें, वे उपाध्याय हैं। ३ पांच इन्द्री और मनको वशमें करके मोक्ष मार्गको जो साधें, वे साधु हैं। ४ धर्मध्यान और शुक्लध्यान। धर्मध्यानके चार भेद, आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और संस्थानविचय। शुक्लध्यानके भी चार भेद,—पृथक्त्ववितर्कवीचार, सूक्ष्मक्रियानिवृत्ति, एकत्ववितर्कवीचार और व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

या मध्य लोक नभ तीन विध,
अकृत अमिट अनईसरौ।
अविचल अनादि अनअंत सब,
भाख्यौ श्रीआदीस्वरौ ॥ ६ ॥

अर्थ—श्रीआदीश्वर भगवानने अर्थात् पहिले तीर्थंकर श्रीऋषभदेवने लोक अलोकका स्वरूप इस प्रकार कहा है—अलोकाकाश अचल है, अनादि कालसे है, अनन्त काल-तक रहेगा, अकृत है अर्थात् उसे किसी ब्रह्मा आदि ईश्वरने नहीं बनाया है-स्वयंसिद्ध है, अनमिट है अर्थात् कोई महादेवादि उसका संहार नहीं कर सकते हैं-मिटा नहीं सकते हैं, अखंड है, सर्वत्र फैला है, निर्मल है, अजीव है अर्थात् चेतनारहित जड़ है, अमूर्तीक है, उसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच द्रव्य नहीं हैं, गोल त्रिकोणा आदि किसी प्रकारका उसका आकार नहीं है, विकाररहित शुद्ध द्रव्य है, अनन्तानन्त प्रदेशोंसे शोभित है, शुद्ध है, अवगाहना वा स्थान देना यह जिसका असाधारण गुण है, और जिसका नीचे ऊपर पूर्व पश्चिम आदि दशों दिशाओंमें कभी अन्त नहीं आता है। इस महान् अलोकाकाशके बीचों बीच लोकाकाश है, जो ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोकके भेदसे तीन प्रकारका है। इस लोकको भी किसीने रचा नहीं है, कोई मिटा नहीं सकता है, कोई इसका स्वामी नहीं है, अचल है, अनादि है और अनन्त भी है।

तीन लोकका स्वरूप ।

सवैया इकतीसा (मनहर)।

पूरव पच्छिम सात-नर्कतलैं राजू सात,
आगैं घटा मध्यलोक राजू एक रहा है।
ऊंचै वढ़ि गया ब्रह्म लोक राजू पांच भया,
आगैं घटा अंत एक राजू सरदहा है॥
दच्छिन उत्तर आदि मध्य अंत राजू सात,
ऊंचा चौदै राजू षट द्रव्य भरा लहा है।
असंख्यात परदेस मूरतीक कियौ भेस,
करै धरै हरै कौन स्वयंसिद्ध कहा है॥७॥

अर्थ—सातवें नरकके नीचे (जहां कि त्रस जीव नहीं हैं-निगोद जीव भरे हैं) इस लोककी चौड़ाई पूर्वसे पश्चिम-तक सात राजू है। उससे ऊपर क्रमसे घटता गया है, सो मध्य लोकमें सुदर्शन मेरुकी जड़में केवल एक राजू चौड़ा रह गया है। आगे फिर विस्तृत हो गया है, सो ब्रह्म स्वर्गके अन्तमें पांच राजू होकर फिर घटने लगा है और अन्तमें सिद्धालयके ऊपर फिर एक राजू रह गया है। (यह जगह २ की पूर्वसे लेकर पश्चिमतक चौड़ाई बत-लाई गई। अब उत्तर दक्षिणकी मोटाई बतलाते हैं।) आदि मध्य और अन्तमें सब जगह अर्थात् मूलसे लेकर लोकशिखरके अन्ततक सर्वत्र सात राजू मोटाई (उत्त-

---

१ सात राजूकी ऊंचाईपर। २ नीचेसे साढ़े दश राजूकी ऊंचाईपर।

रसे दक्षिण) है, और ऊंचाई आदिसे अन्ततककी चौदह राजू है। इस लोकमें जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छहों द्रव्य भरे हुए हैं। इसके असंख्यात प्रदेश हैं (एक परमाणु जितना आकाश रोकता है, उसे एक प्रदेश कहते हैं।) इसने मूर्तीक वेष धारण किया है, अर्थात् यद्यपि लोकाकाश मूर्तिरहित है—स्पर्शरसगंधवर्ण-रहित है, तो भी मूर्तीक अर्थात् डेड़ मुरज (मृदंग) आकार है। यह स्वयंसिद्ध है। इसको न कोई बनाता है, न कोई धारण करता है और न कोई संहार करता है।

तीनौं लोक तीनौं वातवलै वेढ़े सब ठौर।
वृच्छछाल अंडजाल तनचाम देखिए।
अधोलोक वेत्रासन मध्यलोक थाली मन,
ऊरध मृदंग गनि ऐसो ही विसेखिए॥
कर कटि धारि पाउंकौं पसारि नराकार,
डेढ़ मुरज आकार अविनासी पेखिए।
घरमाहिं छींकौ जैसैं लोक है अलोक बीचि,
छींकेकौं अधार यह निराधार लेखिए॥८॥

अर्थ—तीनों लोक सब जगह घनोदधि वातवलय,

---

१ जहां जीव अजीवादि पांच द्रव्यें नहीं हैं, केवल एक आकाश द्रव्य है, उसे अलोकाकाश कहते हैं। २ मूलसे सात राजूकी ऊंचाई तक अधोलोक है, सुमेरुपर्वतकी ऊंचाईके बराबर एक लाख चालीस योजन मध्य लोक है और सुमेरुसे ऊपर एक लाख चालीस योजन कम सात राजू ऊर्द्धलोक है।

घनवातवलय और तनुवातवलय इन तीन वातवलयोंसे इसतरह घिर रहे हैं, जैसे वृक्ष छाल (वल्कल)से, अंडा अपने ऊपरकी जालीसे और जीवोंके शरीर चमड़ेसे लिपटे वा घिरे दिखलाई देते हैं। अभिप्राय यह कि, सारा लोक घनोदधि वातवलयसे घिरा हुआ है, घनोदधि वातवलय घन वातवलयसे घिरा है और इसी प्रकार घनवातवलय तनुवातवलयसे वेष्टित है । इन तीन लोकोंमेंसे अधोलोक वेत्रासनके अर्थात् वेतके बने हुए आसनके समान है, मध्य लोक थालीके समान है, और ऊर्द्ध्वलोक बीचमें चौड़ा और ऊपर नीचे संकीर्ण आकार-वाले मृदंगके आकारका है । दोनों हाथोंको कमरपर रखके और दोनों पैरोंको तिरछे फैलाकर खड़े होनेसे मनुष्यका जैसा आकार होता है अथवा एक आधे मृदं-गको औंधा रखके उसपर एक पूरे मृदंगके रखनेसे जैसा आकार बनता है, वैसा समूचे लोकका आकार है। यह लोक अविनाशी है, अर्थात् सदासे है और सदा रहेगा। जिस तरह घरमें छींका लटका रहता है, उसी प्रकारसे अनन्त अलोकाकाशके बीचमें यह लोक लटक रहा है, अन्तर सिर्फ इतना है कि, छींका एक रस्सीके आधारसे

---

१ अधोलोक अपनी तलीमें सात राजू चौड़ा और सातराजू मोटा इस तरह चौकोर वा समचौरस है। २ मध्य लोकका स्थंडिल अर्थात् चबूतरा चौकोर है। थालीकी उपमा स्वयंभूरमण समुद्रतककी ही विवक्षासे ग्रन्थकारने दी है। समचौकोर क्षेत्रमें वृत्त खींचनेपर जो चार कौने शेष रह जाते हैं, वे इस दृष्टान्तमें अपेक्षित नहीं हैं। उनकी अपेक्षा लेनेसे मध्यलोक चौकीके आकार हो जाता है। ३ मृदंगके आकार ऊंचाईरूप।

लटका रहता है, परन्तु लोक निराधार है,–उसको कोई सहारा नहीं है। अर्थात् लोक घनोदधि वातवलयके आधार है, घनोदधि घनवातवलयके और वह तनुवातवलयके आधार है। तनुवातवलय आकाशके आधार है और आकाश स्वप्रतिष्ठित है–उसे किसीका आधार नहीं है। क्योंकि वह सर्वव्यापी है। तनुवातके अन्ततक लोक-संज्ञा है।

तीन सौ तेताल राजू घनाकार सब लोक,
घनोदधि घन तनुवातके अधार है।
तामैं चौदे चौखूंटी त्रसनाली त्रस थावर,
परैं तीनसौ उन्तीस थावर सदा रहै।
दच्छिन उत्तर डोरी वियालीस राजू सब,
पूरव पश्चिम उनतालको विचार है।
राजू अंस बीसासौ तेतालीस अधिक कहे,
लोक सीस सिद्धनिकौं मेरो नमोकार है ॥९

अर्थ—सारे लोकका घनफल ३४३ राजू है। (लम्बाई चौड़ाई और मोटाईके गुणनफलसे जो निकलता है, उसे घनफल कहते हैं। यदि समस्त लोकके एक २ राजू लम्बे चौड़े और मोटे खंड किये जावें, तो उनकी संख्या ३४३ होगी) और (पहिले कहे अनुसार) यह लोक घनोदधि वात, घनवात और तनुवातवलयके आधारसे ठहरा हुआ है। इसके बीचमें १४ राजू ऊंची और

चौखूंटी अर्थात् एक राजू लम्बी एक राजू चौड़ी (पांसे-सरीखी) त्रसनाली है, जिसमें त्रस और स्थावर जीव रहते हैं और उस त्रसनालीके बाहिर शेष ३२९ राजूके[1] स्थानमें केवल स्थावर[2] जीव रहते हैं। सब लोकाकाशकी दक्षिण उत्तर डोरी[3] ४२ राजू है अर्थात् लोकके नीचेकी और ऊपरकी मोटाई सात २ राजू, और दोनों तरफकी ऊंचाई चौदह २ राजू इस तरह ४२ राजू है और पूर्व पश्चिम डोरी कुछ अधिक ३९ राजू अर्थात् ३९ ४३/२८८ राजू है। ऐसे विस्तारवाले लोकके सीसपर अर्थात् ऊपर (तनुवातवलयमें) जो सिद्ध भगवान् विराजमान हैं, उनको मेरा नमस्कार है।

इस सवैयामें जो पूर्व पश्चिमकी डोरी ३९से ४३/२८८ अधिक बतलाई है, इसका कारण क्षेत्रगणितसे इस प्रकार स्पष्ट होता है:—नकशेमें क से घ तककी रेखा ७ राजू है और क से ख तक तथा ग से घ तक तीन २ राजू है, क्योंकि ख ग एक राजू है। और ख से च तक तथा ग से ठ तककी रेखाएं हमको मालूम हैं कि सात २ राजू हैं। इस तरह हमको क ख च तथा ग घ ठ त्रिभुजोंकी दो २ रेखाओंकी लम्बाई मालूम है और क च तथा घ ठ

---

१ लोकका कुल घनफल ३४३ राजू है। इसमें त्रस नाडीका घनफल १४×१×१=१४ निकाल दीजिये, तो ३२९ शेष रह जावेंगे। २ एकेन्द्री जीवोंको अर्थात् पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति कायके जीवोंको स्थावर कहते हैं और दो इन्द्रीसे लेकर पंचेन्द्री जीवों तकको त्रस जीव कहते हैं। ३ घेरा वा परिधि।

करणोंकी लम्बाई निकालना है। कोटिके वर्गमें भुजाके वर्गको जोड़नेसे जो संख्या आती है, उसका वर्गमूल निकालनेसे करण मालूम हो जाता है। इस नियमके अनुसार ७X७+३X३=५८ का वर्गमूल क च रेखा हुई और इतनी ही घ ठ हुई। अब इन दोनोंका जुदा २ वर्गमूल नहीं निकाल कर इकठ्ठा करके निकालनेसे १५$\frac{७}{३०}$ हुआ। ठीक इसी रीतिसे च छ, छ ज, झ ट, और ट ठ रेखाओंकी लम्बाई निकालनेसे एकत्र ६५ का वर्गमूल १६$\frac{१}{८}$ हुआ। अब १५$\frac{७}{३०}$+१६$\frac{१}{८}$ में लोकके नीचे की (क घ की) लम्बाई ७ राजू और लोकके ऊपरकी (ज झ) की लम्बाई १ राजू जोड़ने से ३९$\frac{४३}{१२०}$ हो जावेंगे, जो कि ३९ से $\frac{४३}{१२०}$ अधिक हैं।

ऊखलमैं छेक वंसनाल लोक त्रसनाली,
ऊंची चौदै चौरी एक राजू त्रस भरी है।
यामैं त्रस बाहिर थावर आउ बाँधी कहूं,
मर्नसौं अगाऊ गयौ त्रस चाल करी है॥
बाहिर थावर कोउ त्रस आउ बांधी होउ,
मर्न समै कारमान त्रसरीति धरी है।
केवल समुद्धात त्रसरूप तहां जात,
तीनौं भांति उहां त्रस जिनवानी खिरी है १०

अर्थ—ऊखलीमें जिस तरह एक पोली वांसकी नली खड़ी कर दी हो, इस तरह लोकाकाशके वीचमें त्रसनाली है जो चौदह राजू ऊंची और एक राजू चौड़ी है, तथा त्रसजीवोंसे भरी हुई है। ये त्रसजीव यद्यपि त्रसनाड़ीके ही भीतर होते हैं-वाहिर कहीं भी इनका अस्तित्व नहीं कहा है, तो भी आगे कहे हुए तीन प्रकारोंसे त्रसजीव त्रसनाड़ीसे वाहिर भी पाये जाते हैं,—एक तो कोई त्रस-जीव जब स्थावरजीवकी आयुका बंध करता है, तव वह

---

१ वांसकी नलीकी उपमा पोलेपनके कारण दी है। परन्तु त्रसनाली गोल नहीं है। चौपड़के पांसेकी नाईं लम्बी चौखूंटी है। २ त्रसनाली सामान्यरूपसे १४ राजू लम्बी है। परन्तु वारीकीसे देखा जाय, तो कुछ कम तेरा राजू है। क्योंकि सातवें नरकके नीचे एक राजूमें त्रस जीव नहीं हैं-निगोदिया हैं, और सातवें नरककी भूमिकी कुछ कम आधी मोटाईमें और सर्वार्थसिद्धिके ऊपर इक्कीस योजनमें त्रस जीव नहीं हैं। और त्रसनाली उतनीहीको कहना चाहिये, जितनेमें त्रस जीव हों। ३ यहां 'त्रस' शब्द उपलक्षण है। अर्थात् त्रसनाड़ीमें केवल त्रस जीव ही नहीं भरे हैं, पृथ्वी आदि पांच प्रकारके स्थावर भी हैं। परन्तु त्रसनाड़ीके वाहिर अन्यत्र कहीं भी त्रसजीव नहीं हैं, इसलिये त्रसनाड़ीमें त्रस जीव भरे हैं, ऐसा कहा है। और त्रसनाड़ीमें प्रधानता भी त्रसोंकी ही है। ४ जिस आयुको जीव भोगता है, उसके तीन भागोंमेंसे दो भाग भोग लेनेपर आगामी भवकी आयु बांधनेकी योग्यता होती है। अर्थात् दो भाग व्यतीत होते ही आगामी भवकी आयु वँध जाती है। परन्तु यदि उस समय नहीं वँधे, तो एक भाग जो वाकी रह गया है, उसके तीन भागोंमेंसे दो भाग वीत जानेपर वँधती है और यदि उस समय भी नहीं वँधती है, तो फिर जो शेष रहती है, उसके तीन भागोंमेंसे दो वीतनेपर वँधती है, इसतरह अधिकसे अधिक आठ अपकर्षण होते हैं। यदि पहिले आयु न वँध पाई हो, तो मरणसे अन्तर्मुहूर्त पहिले तो अवश्य ही बंध जाती है।

तीन लोकका पूर्व पश्चिमका नकशा। - पृष्ठ १०
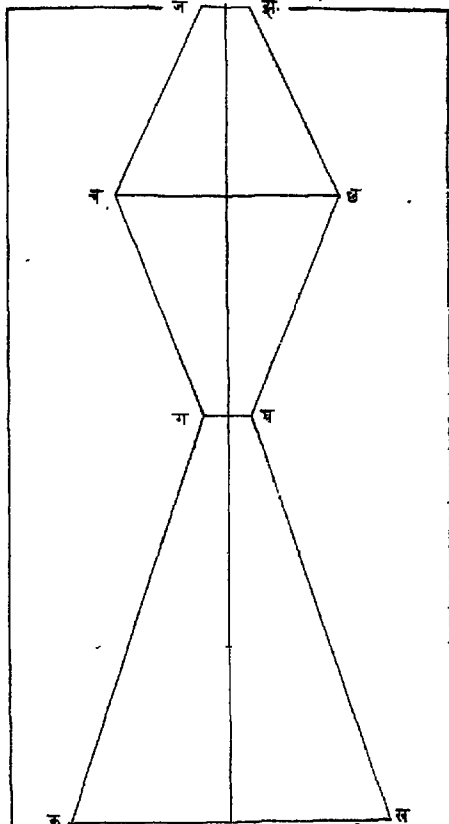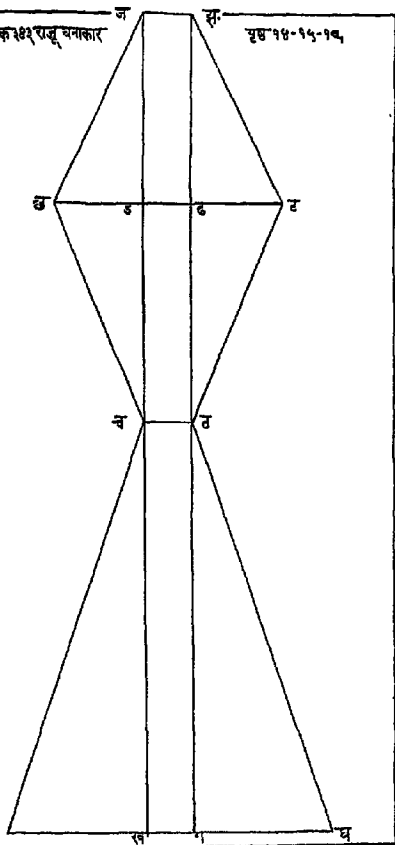
क ख रेखा ३ राजू । ख ग १ राजू । ग घ ३ राजू । क घ ७ राजू । ख ज झ ग त्रसनाडी । ख च, ग ठ, च ज, ठ झ चारों सात सात राजू । च ड और ड ज साढ़े तीन तीन राजू । छ ड और ढ ट दो दो राजू ।
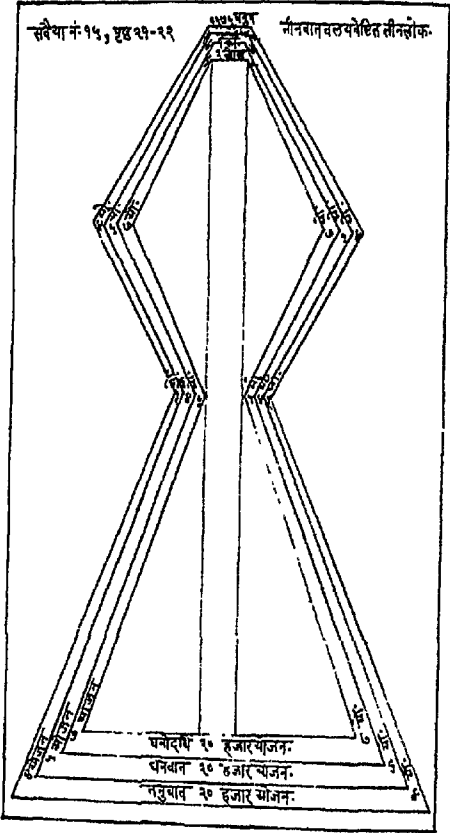
सवैया नं॰ १५, पृष्ठ २१-२२
तीनवातवलयवेष्टित तीनलोक.
घनोदधि २० हजार योजन.
घनवात २० हजार योजन.
तनुवात २० हजार योजन.

त्रस आयुके अन्तर्मुहूर्तकाल बाकी रहनेपर मरणके समय मारणान्तिक समुद्घात करता है। उस समय उसके कुछ प्रदेश त्रसनाड़ीसे बाहिर जहां वह स्थावरपर्याय धारण करेगा, वहां जाते हैं, सो इस अपेक्षासे त्रसनाड़ीसे बाहिर त्रसजीवोंका अस्तित्व हुआ। दूसरे त्रसनाड़ीसे बाहिरका कोई स्थावर जब त्रस पर्यायकी आयुका बंध करता है, तब मरणके समय कार्माण शरीरसहित त्रस-नामा नाम कर्मके उदयसे त्रस होकर त्रसनाड़ीके प्रति गमन करता है, उस समय विग्रह गतिमें त्रसनाड़ीके बाहिर त्रसका अस्तित्व हुआ और तीसरे केवलीभगवान जब केवलसमुद्घात करते हैं, तब उनके प्रदेश त्रसनाड़ी और उससे बाहिर सर्वत्र लोकमें व्याप्त हो जाते हैं, सो इस तरह भी त्रसनाड़ीसे बाहिर त्रसका अस्तित्व हुआ। क्योंकि केवलीभगवान् त्रस हैं। इस तरह तीन प्रकारसे त्रसनाड़ीके बाहिर भी त्रस जीवोंका अस्तित्व जिनवाणीमें बतलाया है।

तीनों लोकोंका घनफल।

छप्पय।

पूरब पच्छिमतलैं सात, मधि एक बखानी।
पंच स्वर्गमैं पांच, अंतमैं एक प्रवांनी॥
चहुं मिलाय चहुं अंस, तीनि साढ़े परमानौ।
दच्छिन उत्तर सात, साढ़ चौवीस बखानौ॥

ऊंचा चौदै राजू गुणौ, अधिक तितालिस तीनसै।
यह घनाकर तिहुँ लोककौ, केवलग्यानविषै लसै ११

अर्थ—यह लोक तलीमें पूर्व, पश्चिम सात राजू, मध्यमें एक राजू, पांचवें स्वर्गमें पांच राजू, और अन्तमें एक राजू चौड़ा है। इस तरह चारों स्थानोंकी चौड़ाईका जोड़ १४ राजू होता है, इसके चार अंश करो, अर्थात् चौदहमें चारका भाग दो, तो साढ़े तीन होंगे। इस ३॥ में लोककी दक्षिण उत्तरकी मुटाई सात राजूका गुणा कर दो, तो २४॥ साढ़े चौवीस होंगे। और फिर इस चौड़ाई और मुटाईके गुणनफलमें १४ राजू ऊंचाईका गुणा कर दो, तो ३४३ राजू होंगे। यही तीनों लोकोंका घनफल है, जो भगवानके केवलज्ञानमें भासमान होता है।

अधोलोकका घनफल।

पूरव पच्छिम तलैं सात, मधि एकै गाई।
उभय मिलेसैं आठ, अर्धकरि चारि बताई॥
दच्छिन उत्तर सात, गुणौ अट्ठाइस राजू।
ऊंचा राजू सात, सतक छयानवे भया जू॥

---

१ लम्बाई चौड़ाई और मुटाईके गुणनफलको घनफल कहते हैं। लोककी चौड़ाई चार स्थानोंमें चार तरहकी कम ज्यादा थी, इसलिये उसको जोड़कर चारका भाग करके औसत चौड़ाई निकाल ली और फिर उसमें लम्बाई तथा मुटाईका गुणा किया।

यह अधोलोकका सब कहा, घनाकार जिनधरममैं
मति परौ नरकमैं पापकरि, रहौ सुमारग परममैं ॥१२

अर्थ—लोकके नीचे पूर्वपश्चिम चौड़ाई सात राजू और मध्यलोकमें एक राजू कही है। इन दोनोंको मिलानेसे आठ, और आधा करनेसे चार राजू होते हैं। इनमें दक्षिण उत्तर मुटाई सात राजूका गुणा करनेसे अट्ठाइस २८ राजू होते हैं और उनमें अधोलोककी ऊंचाई सात राजूका गुणा करनेसे १९६ राजू होते हैं। जैनधर्ममें अधोलोकका सारा घनफल यही १९६ राजू कहा है। अधोलोकमें जीव पापके उदयसे उत्पन्न होता है। इससे हे भव्यप्राणियो, पाप करके नरकमें मत पड़ो, उत्कृष्ट सुमार्ग अर्थात् जिनधर्ममें रहो। वीतराग मार्गकी उपासना करते रहो।

ऊर्द्धलोकका घनफल।

मध्यलोक इक ब्रह्म, पांच दुहुं मिले भए षट।
पूरब पच्छिम दिसा, अर्ध करि तीन राजु रट॥
दच्छिन उत्तर सात, गुणी इकईस बखानी।
ऊंचे साढ़े तीन, साढ़ तेहत्तरि जानी॥

---

१ निगोदसे लेकर मेरुपर्वतकी जड़तक अधोलोक है, जो ७ राजू ऊंचा है। चित्राभूमिके नीचे खरभाग, पंकभाग, सातों नरक और निगोद सब अधोलोक वा पाताललोकमें गर्भित हैं।

साढ़ तिहत्तरि विध यही, लोक अंतसौं ब्रह्म लग।
राजू इकसौ सैंताल सब, धरम करैं पावैं सुमग ॥१३

अर्थ—मध्यलोकमें पूर्वपश्चिम दिशाकी चौंड़ाई एक राजू और ब्रह्मस्वर्गमें पांच राजू है। दोनोंको मिलानेसे छह राजू हुए। इनके आधे किये तो तीन राजू हुए। इनसे दक्षिण उत्तरकी मुटाई सात राजूका गुणाकार किया, तो इक्कीस राजू हुए और उसमें ब्रह्मस्वर्ग तककी ऊंचाई ३॥ साढ़ेतीनका गुणा किया, तो ७३॥ साढ़े तेहत्तर राजू हुए। यह मध्यलोकसे ब्रह्मस्वर्ग तकका घनफल हुआ और इसी प्रकारसे इतना ही अर्थात् ७३॥ राजू घनफल ब्रह्मस्वर्गसे लोकके अन्त तक हुआ, और दोनोंका जोड़ अर्थात् ऊर्द्धलोकका कुल घनफल १४७ राजू हुआ। यह ऊर्द्ध-लोकका सुमार्ग धर्म करनेसे प्राप्त होता है।

तीनसौ तेतालीस राजूका जुदा २ ब्योरा।

छियालीस चालीस, और चौंतीस अठाई।
बाइस सोलै दस, उनीस साढ़े बतलाई॥
साढ़े सैंतिस साढ़, सोल साढ़े सोला भनि।
आगैं दो दो हीन, अंत ग्यारा राजू गनि॥
इम सात नरक आठौं जुगल, ऊपर सोला थानमैं।
राजू तेतालिस तीनसै, घनाकार कहि ग्यानमैं॥१४

अर्थ—सातों नरकोंका, स्वर्गके आठों युगलोंका और

सोलहवें स्वर्गसे लेकर लोकके अन्त तक सोलह स्थानोंका क्रमसे ४६, ४०, ३४, २८, २२, १६, १०, १९॥, ३७॥, १६॥, १६॥, १४॥, १२॥, १०॥, ८॥ और ११ राजू घनफल है और उस सबका जोड़ ३४३ राजू घनाकार होता है, ऐसा शास्त्रमें कहा है।

तीनों वातवलयोंका जुदा जुदा परिमाण।

सवैया इकतीसा (मनहर)।

तलैं वातवलै मौटे जोजन सहस साठ,
ऊंचैं एक राजूलौं साठ सहस धारने।
आगैं सात पांच चारि तीनौं सोलै जोजनके,
मध्य पांच चारि तीन बाराके चितारने॥
ब्रह्मलोक तीनौं सोलै अंतमाहिं तीनौं बारै,
सीस दोय कोस एक कोसके विचारने।
तनुवात धनुष पौनै सोलैसै ताके भाग,
पंद्रहसै सिद्ध एक भागमैं निहारने॥ १५॥

---

१ लोकके तलेकी चौड़ाई ७ राजू है, और सातवें नरकके नीचेकी चौड़ाई ४३ का सातवां भाग है। इन दोनोंको जोड़ा तो $\frac{७}{१}+\frac{४३}{७}=\frac{९२}{७}$ हुए, और आधा किया तो $\frac{४६}{७}$ हुए। अब इसमें उत्तर दक्षिण मुटाईका और एक राजू ऊंचाईका गुणा करते हैं, तो $\frac{४६}{७}\times\frac{७}{१}\times\frac{१}{१}=४६$ राजू घनफल लोकके नीचेसे सातवें नरकके नीचेतकका हुआ। इसी तरहसे सातवें नरकके नीचेकी चौड़ाई और छठे नरककी नीचेकी चौड़ाई $\frac{३७}{७}$को मिलाने, आधा करने, और सातसे तथा एकसे गुणा करनेपर ४० राजू सातवें नरकका घनफल हुआ। आगे भी इसी तरहसे समझ लेना।

अर्थ—लोकके तलेसे लेकर एक राजूकी ऊंचाई तक अर्थात् निगोद तक तीनों वातवलयोंकी मुटाई साठ हजार योजन है, अर्थात् प्रत्येक वातवलय बीस बीस हजार योजन मोटा है। इसके आगे अर्थात् ऊपर मध्य-लोक तक पहिला वातवलय सात योजन का, दूसरा पांच योजनका, और तीसरा चार योजनका है। इस तरह तीनों वातवलय मध्यलोक तक सोलह योजन मोटे चले आये हैं। मध्य लोककी बगलोंमें पहिला पांच योजनका, दूसरा चारका और तीसरा तीन योजनका है। तीनों मिलकर १२ योजन मोटे हैं। मध्यलोकसे ऊपर पांचवें ब्रह्मस्वर्ग तक घनोदधिवात सात योजनका, घनवात पांच योजनका और तनुवात चार योजनका है। तीनों मिलकर सोलह योजन मोटे हैं। आगे पांचवें स्वर्गसे ऊपर लोकके अन्त तक पहिला वातवलय पांच योजनका, दूसरा चारका और तीसरा तीन योजनका है। तीनों बारह योजनके हैं। लोकके सिरपर चक्रके आकार घनोदधिवातकी मोटाई दो कोसकी, घनवातकी एक कोसकी और तनुवातकी पौने सोलहसौ धनुषकी है। इन १५७५ धनुषके पन्द्रहसौ भाग करनेसे अन्तका जो

---

१ वातवलय एक प्रकारकी वायुके पुंज हैं, जो समस्त लोकको घेरे हुए हैं, और जिनके आधारसे लोक आकाशमें ठहरा हुआ है। सब लोक पहिले घनोदधि वातवलयसे वेष्टित है। इस वातवलयमें जलमिश्रित वायु है। इस वातवलयको दूसरे घनवातवलयने वेढ़ रक्खा है। इसमें सघन वायु है और इसे तीसरे तनुवातवलयने वेढ़ रक्खा है, जो कि हलकी वायुका पुंज है।

एक भाग रहता है, उसमें उत्कृष्ट अवगाहनाके धारण करनेवाले अनन्त सिद्धोंका निवास है।

तीन लोकके ११२ पटलोंका वर्णन।

छप्पय।

एक तीन पन सात, और नव ग्यार तेर जिय।
इकतिस सात सु चारि, दोय इक एक तीनि तिय॥
तीनि तीनि अरु तीनि एक, इक पटल बताए।
इक सौ बारै सरब, वीस थानकके गाए॥
सब सात नरक आठौं जुगल, त्रय ग्रीवक द्वय उत्तरे
उनचास नरक त्रेसठ सुरग, धन दोनौं समकित-
भरे॥ १६॥

अर्थ—सातवें नरकमें १, छट्ठेमें ३, पांचवेंमें ५, चौथेमें ७, तीसरेमें ९, दूसरेमें ११ और पहिलेमें १३ पटल हैं। इस तरह सातों नरकोंमें ४९ पटल हैं। स्वर्गोंके पहिले जुगलमें अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गमें ३१, दूसरे

---

१ पौने सोलहसौमें १५०० का भाग देनेसे १ $\frac{1}{20}$ धनुप होते हैं। यह धनुप प्रमाणांगुलसे है और सिद्धोंकी अवगाहना उत्सेधांगुलसे है। इससे इसमें ५०० का गुणा करनेसे ५२५ धनुप होते हैं। यही सिद्धोंकी उत्कृष्ट अवगाहना है। २ जिन विमानोंका ऊपरी भाग एक समतलमें पाया जाता है, वे विमान एक पटलके कहलाते हैं। प्रत्येक पटलके मध्यके विमानको इंद्रक, चारों दिशाओंमें जो पंक्तिरूप विमान हैं, उन्हें श्रेणीवद्ध और जो श्रेणियोंके वीचमें फुटकर हैं, उन्हें प्रकीर्णक विमान कहते हैं।

सानत्कुमार माहेन्द्रमें ७, तीसरे ब्रह्म ब्रह्मोत्तरमें ४, चौथे लांतव कापिष्टमें २, पांचवें शुक्र महाशुक्रमें १, छट्ठे सतार सहस्रारमें १, सातवें आनत प्राणतमें ३ और आठवें आरण अच्युत जुगलमें ३ पटल हैं। तीनों ग्रैवेयिकोंमें अर्थात् ऊर्ध्व मध्य और अधो ग्रैवेयिकमें तीन तीन मिलकर ९ पटल हैं। नौ अनुदिशोंमें १ और पांच अनुत्तर विमानोंमें १ पटल हैं। इस तरह ६३ पटल स्वर्गोंके हैं। सब मिलाकर नरकों और स्वर्गोंके ११२ पटल हुए। इन दोनोंमें अर्थात् स्वर्गोंमे जो सम्यक्त्वसहित जीव हैं, वे धन्य हैं।

छहों संहननवाले जीव मरकर
कहां कहां उत्पन्न होते हैं?

छहौं तीसरे जाहिं, पांच चौथे पंचम लग।
चार संहनन छठे, एक सातवाँ नरक मग॥
छहौं आठमें सुरग, पांच बारम सुर जावैं।
चार सोलमें लोक, तीन नौ ग्रीवक पावैं॥
दोनौं संहनन नउत्तरै, एक पंच पंचोत्तरे।
इक चरमसरीरी सिव लहै, वंदौं जैनवचन
खरे॥ १७॥

अर्थ—वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्ध-

नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये छह संहनन हैं। इन छहों संहननवाले जीव मरकर यदि नरकोंको जावें, तो पहिले नरकसे तीसरे नरकतक जाते हैं। असंप्राप्तासृपाटिकको छोड़कर शेष पांच संहननवाले चौथे और पांचवें नरकतक जाते हैं। असंप्राप्तासृपाटिकवाले तीसरे नरकसे आगे नहीं जाते हैं। कीलक और असंप्राप्तासृपाटिकको छोड़कर चार संहननवाले छठे नरकतक जाते हैं। कीलकवाले पांचवेंसे आगे नहीं जाते हैं। एक वज्रवृषभ नाराचवाले सातवें नरकतक जाते हैं। शेष पांचवाले सातवें नरकको नहीं जाते हैं। इसी प्रकार यदि इन छहों संहननोंवाले जीव मरकर स्वर्गको जावें, तो आठवें स्वर्गतक जाते हैं। असंप्राप्तासृपाटिकको छोड़कर शेष पांच बारहवें स्वर्गतक जाते हैं। असं० वाले आठवेंसे ऊपर नहीं जा सकते हैं। असं० और कीलकको छोड़कर बाकी चार सोलहवें स्वर्गतक जाते हैं। कीलकवाले बारहवेंसे ऊपर नहीं जा सकते हैं। नाराच वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराच इन तीन संहननवाले नौग्रैवेयिकतक जाते हैं। अर्धनाराचवाले सोलहवेंसे ऊपर नहीं

---

१ हड्डियोंके एक प्रकारके बंधानको संहनन कहते हैं। जिसकी हड्डियां, वेष्टन, और कीलियां वज्रकी हों, वह वज्रवृषभनाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियां और कीलियां वज्रकी हों, वेष्टन वज्रके न हों, वह वज्रनाराचसंहननवाला है। जिसकी हड्डियां वेष्टन और कीलीसहित हों, वह नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियोंकी संधियां आधी कीलित हों, वह अर्ध नाराच संहननवाला है। जिसकी हड्डियां परस्पर कीलित हों, वह कीलित संहननवाला है और जिसकी हड्डियां जुदी २ हों, नसोंसे बँधी हों—परस्पर कीलित न हों, वह असंप्राप्तासृपाटिका संहननवाला है।

जा सकते हैं। वज्रनाराच और वज्रवृषभनाराचवाले अनुदिश विमानोंतक जाते हैं। नाराचवाले नौग्रैवेयिकके ऊपर नहीं जा सकते। एक वज्रवृषभनाराच संहनन-वाले पांच अनुत्तरोंतक जाते हैं। वज्रनाराचवाला अनु-दिश विमानोंके ऊपर नहीं जा सकता। जो चरमशरीरी होता है अर्थात् जिसे उसी भवमें मोक्ष प्राप्त होना होता है, उसका वज्रवृषभनाराच संहनन ही होता है। ये सत्य वचन जिन भगवानके कहे हुए हैं। इनकी वन्दना करता हूं।

छह कालों और चौदह गुणस्थानोंमें
कौन २ संहनन होते हैं?

प्रथम दुतिय अरु तृतिय कालमैं पहिला जानौ।
चौथे षटसंहनन, पंचमें तीन बखानौ॥
कर्मभूमि तिय तीन, एक छट्टेकेमाहीं।
विकल चतुष्कै एक, एक इंद्रीकै नाहीं॥
षट कहे सात गुणथान लग, तीन इग्यारे लौं लहे।
इक खिपकश्रेणि गुण तेरहैं, धन जिनवाणीमैं कहे१८

अर्थ—पहले दूसरे और तीसरे कालमें पहला अर्थात् वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है। चौथे कालमें छहों संह-

१ सुषमासुषमा, सुषमा, सुषमादुःषमा, दुःषमासुषमा, दुःषमा और दुःषमा-दुःषमा इस प्रकार छह कालोंके नाम हैं। पहिला काल चार कोटाकोटि सागर वर्षोंका होता है, दूसरा तीन कोटाकोटि सागरका, तीसरा दो कोटाकोटि सागरका, चौथा ४२००० वर्षकम एक कोटाकोटि सागरका, पांचवाँ इक्कीस हजार वर्षका और छट्ठा भी इक्कीस हजार वर्षका होता है।

ननके धारण करनेवाले जीव होते हैं। पांचवें कालमें अर्ध नाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक इन तीन संहननोंवाले होते हैं। कर्मभूमिकी स्त्रियोंके भी ये ही तीन संहनन होते हैं। छट्ठे कालमें केवल एक असंप्राप्तासृपाटिक संहनन ही होता है, अन्य पांच नहीं। विकल चतुष्क जीवोंके अर्थात् दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोंके भी यही असंप्राप्तासृपाटिक संहनन होता है। एकइंद्री जीवोंके कोई भी संहनन नहीं होता, अर्थात् उनके हड्डियां होती ही नहीं हैं। ये छहों संहनन सातवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच और नाराच ये तीन संहनन ग्यारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। वज्रवृषभनाराच यह एक संहननवाला ही क्षपकश्रेणी चढ़ता है और यह तेरहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इससे यह ध्वनित होता है कि, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिक ये तीन संहनन सातवें गुणस्थानसे ऊपर नहीं पाये जाते, वज्रनाराच और नाराच ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर नहीं पाये जाते और पहले संहननको छोड़कर अन्य पांच संहननोंवाला क्षपकश्रेणी नहीं चढ़ सकता। ऐसा जिनवाणीमें कहा है। यह जिनवाणी धन्य है।

चौवीसों तीर्थंकरोंके वीचका अन्तराल समय।

सवैया इकतीसा।

पचास तीस दस नौ किरोर लाख नव्बै नौ,
सहसकोर नौसै कोर नव्बै नौ कोर है।

सौ सागर वर्ष लाख छ्यासठ सहस छब्बीस,
घाट कोर सागर चौवन तीस और है ॥
नव चारि तीनि घाट पौन पल्य अर्ध पाव,
घाट लाखौं लाख वर्ष लाखौं लाख जोर है।
चौवन छ पांच लाख सहस पौनै चौरासी,
पाव, अंतराजिनेस गावै निसि भोर है ॥१९

अर्थ—आदिनाथ भगवानके मोक्ष जानेके पश्चात् पचास लाख करोड़ सागर वर्षमें अजितनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ। उनके मोक्ष जानेके तीस लाख कोटि सागर वर्ष पीछे संभवनाथ तीर्थंकरका उदय हुआ। उनके निर्वाणके दश लाख कोटि सागर वर्ष पीछे अभिनन्दननाथका जन्म, उनके निर्वाणके नौ लाख कोटि सागर वर्ष पीछे सुमतिनाथका जन्म, उनके निर्वाणके नव्वै हजार कोटि सागर वर्ष पीछे पद्मप्रभका जन्म, उनके निर्वाणके नव हजार कोटि सागरके पीछे सुपार्श्वनाथका जन्म, उनके निर्वाणके नौ सौ कोटि सागर वर्ष पीछे चन्द्रप्रभका जन्म, उनके मोक्ष जानेके नव्वै कोटि सागर वर्ष पीछे पुष्पदन्तका जन्म, उनके मुक्त होनेके नौ कोटि सागर पीछे शीतलनाथका जन्म, उनके सिद्ध होनेके छ्यासठ लाख छब्बीस हजार एकसौ सागर वर्ष घाटि एक करोड़ सागर वर्ष पीछे अर्थात् ३३७३९०० सागर वर्ष पीछे

 जन्म, उनके निर्वाणके चौवन सागर पीछे

वासुपूज्य का जन्म, उनके निर्वाणके तीस सागर पीछे विमलनाथ का जन्म, उनके मोक्ष जानेके नौ सागर पीछे अनन्तनाथका जन्म, उनके मोक्षके चार सागर पीछे धर्मनाथका जन्म, उनके निर्वाणके पौनपल्य घाटि तीन सागर पीछे शान्तिनाथका जन्म, उनके मुक्त होनेके अर्ध पल्य वर्ष पीछे कुंथुनाथका जन्म, उनके मोक्षके हजार कोटि वर्ष घाटि पावपल्य पीछे अरनाथका जन्म, उनके मोक्षके हजार कोटि वर्ष पीछे मल्लिनाथका जन्म, उनके मुक्त होनेके चौवन लाख वर्ष पीछे मुनि-सुव्रतका जन्म, उनके निर्वाणके छह लाख वर्ष पीछे नमिनाथका जन्म, उनके मोक्ष जानेके पांच लाख वर्ष पीछे नेमिनाथका जन्म, उनके मोक्ष जानेके पौने चौरासी हजार वर्ष पीछे पार्श्वनाथका जन्म और उनके निर्वाणके पाव हजार अर्थात् ढाई सौ वर्ष पीछे महावीर *भगवानका जन्म हुआ।* (*जिस समय महावीर भगवानका* मोक्ष हुआ, उस समय चौथे कालके तीन वर्ष साढ़े आठ महीना वाकी थे।) तीर्थंकरोंके इन अन्तराय समयोंका शाम सवेरे स्मरण करना चाहिये।

कर्मोंकी १४८ प्रकृतियां कौन २ गुणस्थानोंमें क्षय होती हैं ?

छप्पय।

सात प्रकृतिकौ घात, ठीक सातम गुणथानै।
तीनि आव नहिं होय, नवम छत्तीसौं भानै॥
दसमैं लोभ विदार, बारहैं सोल मिटावै।
चौदहमैंके अंत, बहत्तर तेर खिपावै॥

इमि तोर करम अड़ताल सौ,
मुकतिमाहिं सुख करत हैं।
प्रभु हमहिं बुलावौ आपढिग,
हम हू पाँयनि परत हैं॥ २०॥

अर्थ—यह जीव अनन्तानुवंधी क्रोध, मान, माया लोभ और मिथ्यात्व, मिश्र मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन सात प्रकृतियोंका क्षय चौथेसे सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक करता है अर्थात् क्षायक सम्यग्दृष्टी जीवके इन सात प्रकृतियोंकी सत्ता सातवें गुणस्थानसे आगे नहीं रहती। अप्रमत्त गुणस्थानके दो भेद होते हैं-एक स्वस्थान अप्रमत्त और दूसरा सातिशय अप्रमत्त। सातिशय अप्रमत्त वह कहलाता है, जो श्रेणी चढ़नेके सन्मुख होता है[1]। इस मोक्षगामी जीवके नरकायु तिर्यंचायु और देवायुकी सत्ता नहीं होती है। नववें गुणस्थानमें ३६ प्रकृतियोंका क्षय करता है (देखो कवित्त ८२), दशवेंमें सूक्ष्मलोभको नष्ट करता है, बारहवें गुणास्थानमें ज्ञानावरणीकी ५,—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवल, दर्शनावरणीकी ६,—चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा और प्रचला, और अन्तरायकी ५,—दान, लाभ, भोग उपभोग, और वीर्य इसतरह सब मिलाकर १६ प्रकृतियोंका क्षय करता है। चौदहवें गुणस्थानके अन्तमें जब दो समय रह जाते हैं,

---

१ यह कथन क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीवकी अपेक्षासे है। उपशमश्रेणीवाले उपशमसम्यक्त्वीके इन प्रकृतियोंकी सत्ता ११ वें गुणस्थानतक रहती है।

तब पहले समयमें ७२ और दूसरे समयमें १३ प्रकृति-योंकों खिपाता है। इस तरह सब मिलाकर १४८ कर्मोंके जालको तोड़कर जीव मुक्त हो जाता है और वहां अनन्त सुखोंको भोगता है। हे प्रभो, मैं आपके पैरोंमें पड़ता हूं, आप मुझे अपने समीप बुला लेवें अर्थात् अपने समान मुझे भी कर्मोंसे रहित कर देवें।

मानुषोत्तर पर्वतका परिमाण।

कवित (३१ मात्रा)।

मनुषोत्तर पर्वत चौराई, भूपर एक सहस बाईस।
मध्य सात सौ तेइस जोजन, ऊपर चार सतक चौईस
सतरहसौ इकईस उंचाई,जड़ चारसौ पाव अरु तीस।
रिजु विमान किहि भाँति मिल्यौ है, जोजन लाख
कह्यौ जगदीस ॥ २१ ॥

अर्थ—मानुषोत्तर पर्वत जो कि अढ़ाई द्वीप अर्थात् मनुष्य क्षेत्रके बाहिर है और जिसके पहले पहले मनु-ष्योंका निवास है, उसका विस्तार इस कवित्तमें बतलाया है। इस पर्वतकी चौड़ाई पृथ्वीपर १०२२ योजन है। ऊपरकी चौड़ाई क्रमसे कम होती गई है। अर्थात् उसकी चौड़ाई मध्यमें ७२३ योजन है और ऊपर ४२४ योजन है। ऊंचाई इस पर्वतकी १७२१ योजन है और जड़ इसकी जो कि चित्रापृथ्वीमें है ४३०¼ योजनकी है। बहुतसे लोग समझते हैं कि इस पर्वतसे स्वर्गोंका ऋजु-

विमान मिला होगा, इसलिये इसके उसपार लोग नहीं जा सकते होंगे। परन्तु यह ठीक नहीं है। यह कैसे मिल सकता है? क्योंकि ऋजुविमान तो एक लाख योजन ऊंचा है और यह केवल १७२१ योजन ऊंचा है।

देवदेवीसंभोग।

दोय सुरगमैं कायभोग है, दोय सुरगमैं फरस निहार
चार सुरगमैं रूप निहारे, चार सुरगमैं सबद विचार॥
चार सुरगमैं मनकौ विकलप,
आगैं सहज सील निरधार।
अहमिंदर सब महा सुखी हैं,
वंदौं सिद्ध सुखी अविकार ॥ २२ ॥

अर्थ—पहिले दो स्वर्गोंमें अर्थात् सौधर्म ऐशान स्वर्गमें कायभोग है। अर्थात् इन स्वर्गोंके देवोंको जब काम भोगकी इच्छा होती है, तब वे स्त्री पुरुषोंके समान ही संभोग करते हैं। आगे सानत्कुमार और माहेन्द्र इन दो स्वर्गोंमें देव देवियोंके परस्पर स्पर्शमात्रसे संभोगकी इच्छा पूर्ण हो जाती है। इनसे ऊपर ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ट इन चार स्वर्गोंमें परस्पर रूप देखने मात्रसे कामवासनाकी तृप्ति हो जाती है। आगेके शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार इन चार स्वर्गोंमें कामरूप शब्दोंके श्रवणमात्रसे इच्छा मिट जाती है और आगेके आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चार स्वर्गोंमें

मनमें कामचिन्तवन करनेमात्रसे इच्छा की निवृत्ति हो जाती है। इन सोलह स्वर्गोंके आगे ग्रैवेयिक अनुदिशि आदिमें देवियां नहीं हैं, इसलिये वहांके देव सहज शीलवंत वा ब्रह्मचारी हैं। और जो अहमिंद्र हैं, उनमें पारिषदादि दशभेद छोटे वड़ेपनके नहीं हैं। वे वड़े सुखी हैं। उनसे अधिक सुखी सिद्ध भगवान हैं, जो कि विकाररहित हैं। उनकी मैं वन्दना करता हूं।

१६९ प्रधान पुरुषोंकी गणना।

छप्पय।

चौवीसौं जिनराय-पाय वंदौं सुखदायक।
कामदेव चौवीस, ईस सुमरौं सिवनायक॥
भरत आदि चक्रीस, दुदस बहु सुरनरस्वामी।
नारद पदम मुरारि, और प्रतिहरि जगनामी॥
जिनमात तात कुलकर पुरुष, संकर उत्तम जिय धरौं।
कछु तदभव कछु भव धरत, मुकतिरूप वंदन करौं॥२३

अर्थ—सुखके देनेवाले २४ तीर्थंकरोंके चरणोंकी वन्दना करता हूं। २४ कामदेवोंका सरण करता हूं, जो उसी भवमें मोक्षके नायक अर्थात् सिद्ध हो गये हैं। भरतादि १२ चक्रवर्ती जो अगणित मनुष्य और देवोंके स्वामी थे, तथा ९ नारद, ९ वलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, २४ तीर्थंकरोंकी माताएँ, २४ पिता, १४ कुलकर, और ११ रुद्र (महादेव) ये सब १६९ उत्तम जीव

हुए हैं। इनमें कुछ तद्भवमोक्षगामी हैं अर्थात् उसी भवसे मुक्त होनेवाले हैं और कुछ ऐसे हैं, जो थोड़ेसे भव धारण करके मोक्ष जावेंगे। इसलिये इन मुक्तरूप आत्माओंकी वन्दना करता हूं। (इनमेंसे जिनमाता पिता, कुलकर, बलभद्र, रुद्र, और कामदेव छोड़ देनेसे ६३ शलाका पुरुष कहलाते हैं। १६९ में कुछ तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव पदवीके भी धारक हुए हैं।)

एकसौ अड़तालीस कर्मप्रकृतियाँ।

ग्यानावरनी पांच, दरसनावरनी नौ विध।
दोय वेदनी जान, मोहिनी आठ वीस निध॥
आव चार परकार, नामकी प्रकृति तिरानौ।
तथा एकसौ तीन, गोत दो भेद प्रमानौ॥
कहि अंतरायकी पांच सब,सौ अड़तालिस जानिए।
इमि आठकरम अड़तालिसौं, भिन्नरूप निज मानिए॥ २४॥

अर्थ—ज्ञानावरणीकी ५, दर्शनावरणीकी ९, वेदनीयकी २, मोहनीयकी २८, आयुकी ४, नामकी ९३ अथवा १०३, गोत्रकी २ और अन्तरायकी ५ इस प्रकार आठों-कर्मकी सब मिलाकर १४८ प्रकृतियां हैं। ये १४८ भेद

---

१ नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियोंमें शरीरके ५ भेद अभेदविवक्षासे माने हैं। जहां १०३ भेद माने हैं, वहां शरीरके संयुक्त भेदोंकी अपेक्षासे १५ भेद माने हैं।

जड़रूप कर्मोंके हैं। अपने निजरूपको इनसे जुदा श्रद्धान करना चाहिये। (१४८ मेंसे १०१ प्रकृति तो चार अघातिया कर्मोंकी हैं और ४७ चार घातिया कर्मोंकी हैं।)

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी, पुद्गलविपाकी और
जीवविपाकी प्रकृतियां।

सवैया इकतीसा।

वरनादिक बीस संस्थान संहनन बारे,
बंधन संघात देह अंगोपांग ठारे हैं।
अगुरु लघु आतप उपघात परघात,
निरमान परतेक साधारन सारे हैं॥
अथिर उदोत थिर सुभ असुभ बासठ,
पुग्गलविपाकी भौविपाकी आव चारे हैं।
क्षेत्रकी विपाकी चार आनुपूर्वी अठत्तर,
बाकी जीवकी विपाकी धरैं अघ टारे हैं २५

अर्थ—वर्ण ५, गंध २, स्पर्श ८ और रस ५ इसतरह वर्णादिक २० प्रकृतियां; संस्थान ६ और संहनन ६ इस तरह दोनों १२; बंधन ५, संघात ५, शरीर ५, और अंगोपांग ३, इस तरह चारों १८; अगुरुलघु १, आतप १, उपघात १, परघात १, निर्माण १, प्रत्येक १, साधारण १, अथिर १, उद्योत १, स्थिर १, शुभ १, और अशुभ १, इस तरह १२; कुल मिलाकर ६२ प्रकृतियां पुद्गलविपाकी

हैं। पुद्गलमें उदय आती हैं, अर्थात् पुद्गलमें इनका फल होता है, इसलिये इन्हें पुद्गलविपाकी प्रकृतियां कहते हैं। नरक आयु, तिर्यंच आयु, मनुष्य आयु और देव आयु ये चार प्रकृतियां भवविपाकी हैं। इनका विपाक वा फल भवमें होता है—इनके फलसे जीव संसारमें रुकता है। नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी ये चार प्रकृतियां क्षेत्रविपाकी हैं। इनके फलसे विग्रह गतिमें अर्थात् भव धारण करनेके पहिले जीवका आकार पहिले सरीखा बना रहता है। इनका विपाक क्षेत्रमें अर्थात् विग्रहगतिरूप क्षेत्रमें अथवा आत्मक्षेत्रमें होता है। ज्ञानावरणीकी ५, दर्शनावरणीकी ९, मोहनीकी २८, अंतरायकी ५, गोत्रकी २, वेदनीकी २, नाम कर्मकी २७ इसतरह ७८ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं। पुद्गलविपाकी भवविपाकी आदि सब मिलाकर १४८ प्रकृतियां हो गईं। इनका श्रद्धान करनेसे जीव पापसे मुक्त होता है।

विशेष—नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां हैं, जिनमें एकेंद्री, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्री, पंचेन्द्रिय, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, वादर, सूक्ष्म, दुस्वर पर्याप्त, अपर्याप्त, आदेय, अनादेय, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, यशःकीर्ति, अयशःकीर्ति, श्वासोच्छ्वास, और तीर्थंकर, ये २७ प्रकृतियां जीवविपाकी हैं, ४ क्षेत्रविपाकी हैं और बाकी ६२ पुद्गलविपाकी हैं।

सर्वघाती और देशघाती प्रकृतियां।

केवल दरस ग्यान आवरणी ताकी दोय,
मिथ्यात समै मिथ्यात निद्रा पांच मानिए।
तीनौं चौकरीकी बारै सर्वघाती इकईस,
संज्वलन चार नव नोकषाय मानिये ॥
ग्यानावरणीकी चार दर्शनावरणी तीन,
अंतराय पांच सम्यक मिथ्यात ठानिये।
देसघातीकी छवीस बाकी एकसौ अघाती,
तीनौं घातीकर्म घात आप सुद्ध जानिये

अर्थ—केवलज्ञानावरणी, केवलदर्शनावरणी, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व (मिश्रमिथ्यात्व) निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धिनिद्रा ये पांच निद्रा, अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ ये तीन चौकड़ीके बारह कषाय; इस तरह इक्कीस सर्वघाती प्रकृतियां हैं। ये आत्मगुणको सर्वथा घातनेवाली हैं, इस लिये सर्वघाती कहलाती हैं। और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार संज्वलन कषाय; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये नौ नोकषाय; मतिज्ञानावरणी, श्रुतज्ञानावरणी, अवधिज्ञानावरणी, मनःपर्ययज्ञानावरणी, ये चार ज्ञानावरणी; चक्षुर्दर्शनावरणी, अचक्षुर्दर्शनावरणी,

अवधि दर्शनावरणी, ये तीन दर्शनावरणी; दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय ये पांच अन्तराय; और एक सम्यक्त्व इस तरह २६ देशघाती प्रकृतियां हैं। ये आत्माके गुणोंको एकदेश घात करती हैं–सर्वथा घात नहीं करतीं, इसलिये देशघाती कहलाती हैं। और १०१ प्रकृति अघातिया कर्मोंकी हैं। इस तरह सब मिलाकर २१+२६+१०१=१४८ प्रकृति हैं। इनतीनों प्रकारके कर्मोंको नाश करके आत्मा शुद्ध होता है–मोक्षको प्राप्त होता है।

पांच त्रिभंगी (बंध, उदय, उदीरणा, सत्ता, विशेष सत्ता)।

सवैया इकतीसा।

वर्णादिक च्यार सोलै नाहिं देह आदि पंच,
दस नाहिं मिथ्या एक दोय बंध नाहीं है।
सोलै दस दोय विना बंध एक सतवीस,
मिथ्या उदै तीन दोय वढैं उदै पाहीं है॥
उदय औ उदीरणा एक सत बाइसकी,
सत्ता सौ अड़ताल विसेस सत्ता ठाहीं है।
मिथ्या गुण सौ छियाल काहू सत सत्ताईस,
पांचौं तिरभंगीसौं असंगी आपमाहीं है॥२७

अर्थ—वर्ण, गंध, रस और स्पर्शके जो २० वीस भेद हैं, वे सामान्यकी अपेक्षासे स्पर्श रस गंध और वर्ण इन

चारमें गर्भित हो जाते हैं, इसलिये १६ तो ये कम हुए। और ५ शरीर, ५ वंधन ५ संघात ये १५ प्रकृतियां अविनाभावी हैं। अर्थात् जहां एक शरीरका बंध होता है, वहां उस शरीरसम्बंधी वंधन और संघातका भी वंध अवश्य होता है। इसलिये ५ शरीरप्रकृतियोंमें अविनाभावसम्बंधसे ५ वंधन और ५ संघात भी गर्भित हो जाते हैं। दर्शनमोहकी ३ प्रकृतियां हैं, उनमेंसे १ मिथ्यात्वप्रकृति वंधयोग्य है, वाकी २ वंधयोग्य नहीं हैं। अर्थात् सम्यक्त्वमिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृतिका वंध नहीं होता है, किन्तु उपशमसम्यक्तीके मिथ्यात्वके तीन खंड हो जाते हैं। इस तरह सोलै दश दोय अर्थात् २८ हुईं। इनको छोड़कर वाकी १२० प्रकृतियां वंधयोग्य हैं। और उदयमें दर्शनमोहनीकी तीनों प्रकृति आती हैं, इसलिये वंधकी अपेक्षा उदयमें २ प्रकृतियां ज्यादा हुईं। अर्थात् १२२ प्रकृतियां उदयमें आती हैं। और इतनीहीकी अर्थात् १२२ हीकी उदीरणा (स्थिति पूरी किये विना ही कर्मोंका फल देकर झड़ना) होती है। नानाजीवोंकी अपेक्षा सत्ता १४८ ही प्रकृतियोंकी पाई जाती है। यह सामान्य सत्ता है। विशेष सत्ता किसी एक जीवकी अपेक्षासे होती है। सो किसी एक जीवके मिथ्यात्वगुणस्थानमें अधिकसे अधिक १४६ प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। किसीके १२७ की भी वतलाई है। हमारा आत्मा इन पांचों ही त्रिभंगियोंसे जुदा निजसत्तामें विराजता है।

बंध, उदय और सत्ता।

छप्पय।

बंध एकसौ बीस, उदय सौ बाइस आवैं।
सत्ता सौ अड़ताल, पापकी सौ कहलावैं॥
पुन्यप्रकृति अड़सट्ठ, अठत्तर जीवविपाकी।
बासठ देह-विपाकि, खेत भव चउचउ बाकी॥
इकईस सरबघाती प्रकृति, देशघाति छब्बीस हैं।
बाकी अघाति इक अधिकसत, भिन्न सिद्ध सिव-
ईस हैं॥ २८॥

अर्थ—आठों कर्मोंकी कुल १४८ प्रकृतियां हैं। इन मेंसे १२० प्रकृतियोंका बंध होता है, १२२ उदयमें आती हैं, सत्ता सबकी अर्थात् एकसौ अड़तालीसों प्रकृतिकी रहती है। पाप प्रकृतियां १०० हैं, पुण्यप्रकृतियां ६८[1] हैं, जीवविपाकी ७८ हैं, देह वा पुद्गलविपाकी ६२ हैं, क्षेत्रविपाकी ४ हैं, और भवविपाकी भी ४ हैं। सर्वघाती २१, देशघाती २६ और अघाती प्रकृतियां १०१ हैं। आत्मा इन सबसे भिन्न शिवईश अर्थात् मोक्षका स्वामी है और सिद्ध है।

---

१ पाप और पुण्य प्रकृतियां मिलाकर १६८ हो गईं और कुल प्रकृतियां १४८ ही हैं। फिर ये २० ज्यादा कैसे हो गईं? इसका समाधान यह है कि, ५ वर्ण, ५ रस, २ गंध, और ८ स्पर्श ये २० प्रकृतियां पापरूप भी होती हैं और पुण्यरूप भी होती हैं, इसलिये दोनोंमें गिनी गई हैं।

पाप प्रकृतियोंके नाम ।

सवैया इकतीसा ।

घाति सैंतालीस दुक्ख नीच नरकायु पंच,
संस्थान संहनन बर्न रस मानिए ।
नर पसु गति आनुपूरवी फरस आठ,
गंध दोय इंद्री चार बुरीचाल ठानिए ॥
अथिर अपर्यापत सूच्छम औ साधारण,
उपघात थावर असुभ परवानिए ।
दुर्भग दुस्वर औ अनादेय अजस रूप;
पाप प्रकृति सौ भेद त्यागि धर्म जानिए२९

अर्थ—घाति प्रकृति ४७, दुःख अर्थात् असाता वेदनीय १, नीच गोत्र १, नरकायु १, संस्थान (समचतुरस्रको छोड़कर) अन्तके ५, संहनन (वज्रवृषभनाराचको छोड़कर) अंतके ५, वर्ण ५, रस ५, नरकगति १, पशुगति १, नरकगत्यानुपूर्वी १, पशुगत्यानुपूर्वी १, स्पर्श ८, गंध २, इंद्री (पंचेन्द्रीको छोड़कर) ४, अप्रशस्तविहायोगति १, अस्थिर १, अपर्याप्त १, सूक्ष्म १, साधारण १, उपघात १, स्थावर १, अशुभ १, दुर्भग १, दुःस्वर १, अनादेय १, और अजस १ ये सब मिलाकर १०० पाप प्रकृतियां हैं । इनको त्याग कर धर्मका स्वरूप जानना चाहिये ।

पुण्य प्रकृतियोंके नाम ।

सुर नर पसु आव साता ऊंच भली चाल,
सुर नर आनुपूर्वि निरमान स्वास है ।
बंधन संघात देह वर्ण रस पंच त्रस,
तीन अंग सुभ दोय गंध आठ फास है ॥
अगुरुलघु पंचेंद्री संस्थान संहनन,
वादर प्रतेक थिर पर्यापत जस है ।
आतप उद्योत परघात सुस्वर सुभग,
आदेय तीर्थंकरकौं बंदौं अघ नास है ३०

अर्थ—देवआयु १, मनुष्यआयु १, तिर्यंचआयु १, सातावेदनी १, ऊंच गोत्र १, प्रशस्त विहायोगति १, देवगति १, मनुष्यगति १, देवगत्यानुपूर्वी १, मनुष्यगत्यानुवर्ती १, निर्माण १, श्वासोच्छ्वास १, वंधन ५, संघात ५, शरीर (औदारिकादि) ५, वर्ण ५, रस ५, त्रस १, औदारिकअंगोपांग १, वैक्रियक अंगोपांग १, आहारकअंगोपांग १, शुभ १, गंध २, स्पर्श ८, अगुरुलघु १, पंचेंद्री १, समचतुरस्रसंस्थान १, वज्रऋषभनाराचसंहनन १, वादर १, प्रत्येक १, स्थिर १, पर्याप्त १, यश १, आतप १, उद्योत १, परघात १, सुस्वर १, सुभग १, आदेय १, और तीर्थंकर १ ये सब ६८ पुण्यप्रकृतियां हैं । समस्तपुण्यप्रकृतियोंमें तीर्थंकरप्रकृति

श्रेष्ठ है-पापोंकी क्षय करनेवाली है, इसलिये मैं उसकी वन्दना करता हूं।

जिनमतकी श्रद्धा।

छप्पय।

तिहूं काल षट दरब, पदारथ नव तुम भाखे।
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, षटकायिक राखे॥
आठ कर्म गुन आठ, भेद लेस्या षट जानै।
पंच पंच व्रत समिति, चरित गति ग्यान बखानै।
सरधै प्रतीत रुचि मन धरै,
मुकतिमूल समकित यही।
पद नमौं जोर कर सीस धर,
धन सर्वंग इह विध कही॥ ३१॥

अर्थ—तीन काल—भूत, वर्तमान, भविष्यत्, छहद्रव्य—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पंचास्तिकाय—कालद्रव्यको छोड़कर बाकीके पूर्वोक्त पांचद्रव्य, सप्त तत्त्व—जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, नव पदार्थ—पूर्वोक्त साततत्त्व और पुन्य, पाप, षट्काय—पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय (द्वीन्द्रियादि), आठकर्म—ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनी, मोहनी, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय, आठ गुण—(सम्यक्त्वके) निःशंका, निःकांक्षा, निर्विचिकित्सिता, अमूढ़दृष्टी, उपगूहन, स्थिति-

करण, वात्सल्य, प्रभावना, छहलेश्या—कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल, पांच व्रत—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग, पांच समिति—ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपणा, प्रतिष्ठापना, पांच चारित्र—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात, पांच गति—नरक, देव, मनुष्य, तिर्यंच, मोक्ष, पांच ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, और केवल। इन सब बातोंपर जो श्रद्धान करना, प्रतीत करना, और मनमें रुचि धारण करना है, वही मुक्तिका मूल सम्यग्दर्शन है। उन सर्वज्ञ देवके चरणोंको मैं मस्तकपर हाथ रखके नमस्कार करता हूं, जिन्होंने ये सब बातें बतलाई हैं।

१९९॥ लाख कुलकोड़का ब्योरा।

सवैया इकतीसा।

पृथ्वीकाय बीस दोय जल सात तेज तीनि;
वायु सात तरु बीस आठ परमानिए।
वे ते चउ इंद्री सात आठ नव खग बारै,
जलचर साढ़े बारै चौपे दस जानिए॥
सरीसृप नव नारकी पचीस नर चौदै,
देवता छबीस लाख कुल कोरि मानिए।
दोय कोराकोरीमाहिं आध लाख कोरि नाहिं
सबकौं निहारिकै दयाल भाव आनिए३२

अर्थ—पृथ्वीकायके २२ लाख, जलकायके ७ लाख, तेजकायके ३ लाख, वायुकायके ७ लाख, तरुकाय अर्थात् वनस्पतिकायके ८ लाख, दोइंद्रियके ७ लाख, ते इंद्रियके ८ लाख, चौ इंद्रियके ९ लाख, पक्षियोंके १२ लाख, जलचारी जीवोंके १२॥ लाख, चौपायोंके १० लाख, सरीसृप जीवोंके अर्थात् जमीनपर घिसट कर चलनेवाले सांप आदि जीवोंके ९ लाख, नारकियोंके २५ लाख, मनुष्योंके १४ लाख, और देवोंके २६ लाख कुलकोड़ हैं। सबका जोड़ दो कोड़ाकोड़ीमेंसे आधा लाख कम अर्थात् १९९॥ लाख करोड़ होता है। इन सबको जानकर इनपर दयाभाव रखना चाहिये।

स्पर्श रस गंध वर्णादिके भेदसे जीवोंके शरीरके जो भेद होते हैं, उन्हें कुल कहते हैं। सम्पूर्ण जीवोंके १९९॥ लाख करोड़ भेद हो सकते हैं। योनिस्थानोंकी अपेक्षा कुल अधिक होते हैं, इसका कारण यह है कि, एक योनिसे उत्पन्न हुए जीवोंके भी वर्णादिके भेदसे अनेक भेद हो सकते हैं।

अंकगणनाके ग्यारह भेद।

छप्पय।

ग्यार अंक पद एक, अंक दस सब पद जानी।
पूरब चौदे अंक, बीस अच्छर जिनवानी॥
उनतिस अंक मनुष्य,
पल्य पैंतालिस अच्छर।

सरसौं कुंड छियाल,
डेढ़सौ थिति अच्छर वर ॥
इकतीस अंक पल कलपके,
जंबु फलावटि दस वरन
सब वातवलय ग्यारै वरन,
धन्य जैन संसै हरन ॥ ३३ ॥

अर्थ—जिनवाणीके एक पदके अक्षर ग्यारह अंक प्रमाण अर्थात् १६३४८३०७८८८ हैं। और उन सम्पूर्ण पदोंकी संख्या दश अंक प्रमाण अर्थात् ११२८३५८००५ है। चौदह पूर्वोंके अक्षरोंकी संख्या चौदह अंक प्रमाण अर्थात् ७०५६०००००००००० है। सम्पूर्ण द्वादशांग-वाणीके अक्षरोंकी संख्या वीस अंक प्रमाण–१८४४६७४-४०७३७०९५५१६१५ है। पर्याप्त मनुष्योंकी संख्या २९ अक्षर प्रमाण–७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५-०३३६ है। पल्यकी गिनती ४५ अक्षर प्रमाण—४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००० है। सरसों कुंडके सरसोंकी गिनती ४६ अंक प्रमाण—१९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६ है। स्थिति के अंकोंका प्रमाण १५० है। एक कल्पकालके पल्य ३१

१ इस अलौकिक गणितका जिसे विशेष ज्ञान प्राप्त करना हो, उसे जैन-सिद्धान्तदर्पणके पृष्ठ ६४ में देखना चाहिये। यहां विस्तारके भयसे नहीं लिखा है।

अंक प्रमाण हैं। जम्बूद्वीपका घनफल दश अंक प्रमाण अर्थात् ७९०५६९४१५० योजन है। सब वातवलयोंका घनफल ११ अंक प्रमाण अर्थात् १०२४१९८३४८७ है। संशयके हरण करनेवाले जैनधर्मको धन्य है।

तेरहवें गुणस्थानमें सात त्रिभंगी।

छप्पय।

सात आसरव द्वार, बंध इक साता कहिए।
चौदै भाव प्रमाण, पचासी सत्ता लहिए॥
अस्सी चउरासीय, इक्यासी और पिच्यासी।
यह सत्ता चौ भेद, विसेस जिनेसुर भासी॥
इक कम चालीस उदीरना, उदय वियालिस मानिए
यह तेरहवें गुणथानमें, सात त्रिभंगी जानिए ३४

अर्थ—तेरहवें सयोगिकेवली गुणस्थानमें सात त्रिभंगी होती हैं, सो इस प्रकार,—सत्यमन, अनुभयमन, सत्यवचन, अनुभयवचन, औदारिककाय, औदारिक मिश्र और कार्माण ये सात आश्रवद्वार हैं, और बंध एक साता वेदनीयका है और भाव इस गुणस्थानमें १४ (ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य सम्यक्त्व, चारित्र, मनुष्यगति, असिद्धत्व, भव्यत्व, जीवत्व और लेश्या) होते हैं। ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। यह सत्ता जिनेश्वर भगवानने नाना जीवोंकी अपेक्षा चार प्रकारकी कही है। अर्थात् किसी जीवके ८० प्रकृ-

तियोंकी, (८५में से आहारकचतुष्क और तीर्थंकर-प्रकृति छोड़कर), किसीके ८४ की (एक तीर्थंकरप्रकृतिको छोड़कर), किसीके ८१ की (आहारक चतुष्कको छोड़कर) और किसीके ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता रहती है। ३९ प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है, और ४२ प्रकृतियोंका उदय होता है। इस तरह तेरहवें गुणस्थानमें आश्रव, बंध, भाव, सामान्यसत्ता, विशेषसत्ता, उदीरणा और उदय ये सात त्रिभंगी होती हैं।

बंधदशक छप्पय।

जीव करम मिलि बंध, देय रस तास उदै भनि।
उदीरना उपाय, रहैं जब लौं सत्ता गनि॥
उतकरसन थिति बढ़ैं, घटैं अपकरसन कहियत।
संकरमन पररूप, उदीरन विन उपसम मत॥
संक्रमण उदीरन विन निधत,
घट बढ़ उदरन संक्रमन।
चहु विना निकांचित बंध दस,
भिन्न आपपद जानिमन॥ ३५॥

अर्थ—जीव और कर्मोंके मिलनेको बंध कहते हैं। अपनी स्थितिको पूरी करके कर्मोंके फल देनेको उदय कहते हैं। तप आदि निमित्तोंसे स्थिति पूरी किये विना ही कर्मोंके फल देनेको उदीरणा कहते हैं। जबतक कर्म आत्माके साथ सम्बन्ध रखते हैं, तबतक उनकी सत्ता कहला

ती है। जिस कर्मकी जितनी स्थिति बांधी हो, उतनीसे अधिक हो जानेको उत्कर्षण कहते हैं और घटजानेको अपकर्षण कहते हैं। किसी कर्मके सजातीय एक भेदसे दूसरे भेदरूप हो जानेको संक्रमण कहते हैं। द्रव्य क्षेत्र काल भावके निमित्तसे कर्मकी शक्तिके प्रगट न होनेको उपशम कहते हैं अर्थात् जब कर्मोंकी उदीरणा नहीं होती है और उदय भी नहीं होता है, तब उपशम होता है। संक्रमण और उदीरण न होनेको अर्थात् जो कर्मप्रकृति बांधी हों, वे न दूसरे रूप हों और न उनकी उदीरणा हो, उसे निधत्त कहते हैं। और जिसमें स्थितिका घटना बढ़ना पररूप होना और उदीर्ण होना ये चारों बातें न हों, उसे निकांचित कहते हैं। इस तरह बंधके दश प्रकार हैं। हे मन, तुझे आत्माका पद इनसे सर्वथा भिन्न समझना चाहिये।

तीन लोकके अकृत्रिम चैत्यालयोंकी संख्या।

सवैया तेईसा (मत्तगयन्द)

सात किरोर बहत्तर लाख,
पतालविषै जिनमंदिर जानैं।
मध्यहि लोकमैं चार सौ ठावन,
व्यंतर जोतिकके अधिकानैं॥
लाख चौरासि हजार सतानवै,
तेइस ऊरध लोक बखानैं।

एकेकमैं प्रतिमा सत आठ,
नमैं तिहुजोग त्रिकाल सयानैं ॥३६॥

अर्थ—पातालमें अर्थात् चित्रा पृथिवीके नीचे भवनवासी देवोंके भवनोंमें ७७२०००००० अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, मध्यलोकमें अर्थात् जम्बूद्वीपसे तेरहवें रुचक कुंडलगिरि नामके तेरहवें द्वीपतकके क्षेत्रमें ४५८ जैन मंदिर हैं। व्यन्तरदेवोंके और ज्योतिषीदेवोंके भवनोंमें असंख्यात चैत्यालय हैं। और ऊर्ध्वलोकमें अर्थात् सौधर्म स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धितक ८४९७०२३ चैत्यालय हैं। इन सव मंदिरों या चैत्यालयोंमें एक एकमें एक एक सौ आठ प्रतिमाएं हैं। उन्हें चतुर पुरुष मन वचन कायसे तीनों समय नमस्कार करते हैं।

तीन कम नव कोटि मुनियोंकी संख्या।

पांच किरोर तिरानवै लाख,
हजार अठानवै दोसै छ जानै।
जीव छठे गुणमैं अध सातमैं,
ग्यारसै छ्यानवै चार ठिकानै॥
आठ नवै दस बारहैं चौदहैं,
सौ उनतीस नवै परमानै।
तेरमैं आठ हि लाख हजार,
अठानवै पांचसै दोय बखानै॥ ३७॥

अर्थ—अढ़ाई द्वीपमें एक कालमें अधिकसे अधिक इतने मुनि हो सकते हैं—छठे गुणस्थानमें ५९३९८२०६, सातवें गुणस्थानमें उससे आधे अर्थात् २९६९९१०३, आगे उपशमश्रेणीके आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें इन चार स्थानोंमें सब मिलाकर ११९६, अर्थात् प्रत्येक में २९९, और क्षपकश्रेणीके आठवें, नवें, दशवें, बारहवें तथा चौदहवें गुणस्थानोंमें मिलाकर २९९० अर्थात् प्रत्येकमें ५९८, और तेरहवें गुणस्थानमें ८९८५०२। सब-का जोड़ ८९९९९९९७ होता है। इससे अधिक मुनि एक कालमें नहीं हो सकते।

अढ़ाईद्वीपका ज्योतिषमंडल।

कवित्त (३१ मात्रा)।

एक चन्द इक सूर्य अठासी,
ग्रह अट्ठाइस, नखत बखान।
छयासठ सहस पचत्तर नवसै,
कोड़ाकोड़ी तारे जान॥
इकसौ बत्तिस चंद इही विध,
ढाई द्वीपमध्य परवान,
सब चैत्यालय प्रतिमामंडित,
बंदन करौं जोरि जुगपान॥ ३८॥

---

1 छठे गुणस्थानसे पहले मुनि नहीं होते।

अर्थ—ज्योतिषी देव पांच प्रकारके हैं—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारे। इनमें चन्द्र इन्द्र होता है और सूर्य प्रतीन्द्र होता है। एक चन्द्रमाका परिवार इस प्रकार है—१ सूर्य, ८८ ग्रह, २८ नक्षत्र, और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण। सो ढाई द्वीपमें इसी प्रकारके परिवारवाले १३२ चन्द्रमा हैं। इन सब ज्योतिषियोंके विमान जिन चैत्यालयों और जिन प्रतिमाओं सहित हैं। इसलिये मैं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूं।

आयुकर्मके बंधके नव भेद।

आठ अंस पैंसठ सौ इकसठ,
इकइस सौ सत्तासी जान।
सात सतक उनतीस दोय सौ,
तेतालिस इक्यासी मान॥
सत्ताईस और नौ तीनौं,
एक आठवाँ भेद वखान।
नौमीं अंतकालमें बाँधै,
अगली गतिकी आउ निदान॥ ३९॥

अर्थ—जीव अपनी अगली आयुका बंध कब करता है, इसका खुलासा इस कवित्तमें किया है,—किसी जीवकी आयुमें यदि हम ६५६१ अंशोंकी कल्पना करें, तो इसके तीसरे हिस्सेमें अर्थात् जब २१८७ अंश आयुके शेष

रह जावेंगे, तब वह आगामी भवकी आयुको बाँधेगा। यदि उस समय नहीं बांध सकेगा, तो २१८७ के तिहाई में अर्थात् ७२९ अंश शेष रहेंगे, तब बाँधेगा। यदि उस समय भी न बांध सका, तो २४३ अंश शेष रहनेपर बांधेगा। और तब भी न बांध सका तो त्रिभागके ८१, २७, ९, ३, और १ आदि स्थानोंमें बांधेगा। इस तरह आठ बार जो त्रिभाग हुए हैं, उनमेंसे किसी न किसीमें आयुका बंध कर ही लेगा और यदि आठों त्रिभाग चूक जावेगा, तो अपनी आयुके अन्त समयमें तो अवश्य ही अगली आयु बांध लेगा। विना अगली आयुका बंध किये कोई भी जीव वर्तमान आयुको नहीं छोड़ सकता है। और आयु कर्मका बंध त्रिभागमें ही होता है।

सत्तावन जीवसमास।

छप्पय।

भूजल पावक वायु, नित्य इतर साधारन।
सूच्छम वादर करत, होत द्वादस उच्चारन॥
सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठ मिलत चौदह परवानौ।
परज अपर्ज अलब्ध, गुनत ब्यालीस बखानौ॥
गुन वे ते चौ इंद्री त्रिविध, सर्व एक पंचास भन।
मनरहित सहित तिहुभेदसौं, सत्तावन धर दया
मन॥ ४०॥

अर्थ—संक्षेपसे जीवोंके ५७ भेद होते हैं, वे इस प्रकारसे, पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्यनिगोद, और इतर निगोद। इन छहोंमें सूक्ष्म और बादर ये दो २ भेद होते हैं, इससे १२ भेद हुए। इनमें सप्रतिष्ठित प्रत्येक और अप्रतिष्ठित प्रत्येक ये दो वनस्पतिकायके भेद और मिलानेसे १४ हो गये। और इन सबमें पर्याप्त, अपर्याप्त (निवृत्यपर्याप्त), और अलब्धपर्याप्त (लब्ध्यपर्याप्त) ये तीन २ भेद होते हैं, इसलिये सब मिलाकर एकेन्द्रिय जीवोंके ४२ भेद हुए। इनमें दो इंद्रिय, ते इंद्रिय और चौ इंद्रियके पर्याप्त, अपर्याप्त, अलब्धपर्याप्त भेद मिलानेसे ५१ हुए और पंचेन्द्री जीव संज्ञी असंज्ञी दो तरहके होते हैं और उन दोनोंमें पर्याप्त आदि भेद होते हैं। सो छह भेद पंचेन्द्रियजीवोंके हुए। सब मिलाकर एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यन्त जीवोंके ५७ भेद हुए। इन सब जीवोंपर मनमें दयाभाव रखना चाहिये।

अट्ठानवै जीव समास।

सवैया इकतीसा।

इक्यावन थान जान थावर विकलत्रैके,
गर्भज दो तीनि सनमूरछन गाए हैं।
पांचौं सैनी औ असैनी जल थल नभचारी,
भोगभूमि भूचर खेचर दो दो पाए हैं॥

दो दो नारकी सुदेव नौ विध मनुष्य वेव,
भोगभू कुभोगभू मलेच्छभू वताए हैं।
दोय दोय दोय तीनि आरजमैं राजत हैं,
अठानवै दया करैं साधु ते कहाए हैं॥४१॥

अर्थ—स्थावर और विकलत्रय (दो इंद्रिय, ते इंद्रिय, चौ इंद्रिय) जीवोंके ५१ भेद तो ४० वें पद्यमें कह चुके हैं, उनमें पंचेन्द्रिय जीवोंके ४७ भेद और मिलानेसे ९८ भेद हो जाते हैं। सो इस प्रकारसे,—गर्भज जीवोंके पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो, सम्मूर्छन पंचेन्द्रियोंके पर्याप्त, अपर्याप्त, और अलब्धपर्याप्त ये तीन इस तरह पांच, फिर दोनोंके सेनी और असेनी भेद करनेसे हुए दश। ये दश भेद थलचारी पंचेन्द्रियोंके हुए। इसी प्रकारके दश दश भेद जलचारी और नभचारी पंचेन्द्रियोंमें भी होते हैं। सब तीस भेद कर्मभूमिके पंचेन्द्रिय जीवोंके हुए। भोगभूमिमें जलचर और सम्मूर्च्छन जीव नहीं होते हैं। केवल गर्भज थलचारी और नभचारी होते हैं और इन दोनोंके पर्याप्त अपर्याप्त दो दो भेद होते हैं। इसतरह भोगभूमिके जीवोंके चार भेद हुए। देव और नारकियोंके भी पर्याप्त अपर्याप्तके भेदसे चार भेद होते हैं। मनुष्योंके नव भेद होते हैं—भोगभूमि, कुभोगभूमि और म्लेच्छखंडके मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्तके प्रकारसे ६ भेद

और आर्यखंडके मनुष्योंके पर्याप्त अपर्याप्त अलब्ध-पर्याप्त ये तीन भेद। सब मिलानेसे ९८ भेद हुए—

स्थावर जीवोंके......४२ भोगभूमिके थलनभचारियोंके ४
विकलत्रयके........९ देव नारकीयोंके......४ कर्म-
भूमिके जलचारियोंके १० भोगकुभोग म्लेच्छमनुष्योंके ६
" थलचारियोंके १० आर्यखंडके मनुष्योंके...३
" नभचारियोंके १० —
९८

इन सब जीवोंपर जो दया करते हैं, वे ही साधु पुरुष हैं।

प्रमादोंके भेद।

छप्पय।

विकथारूप पचीस और पनवीस कसायनि।
गुणतैं छस्सै सवा, पांच इंद्री मनसौं गनि॥
पौनैं चार हजार, पांच निद्रासौं गुनिए।
सहस पौन उनईस, नेह अरु मोह सु सुनिए॥
साढ़े सैंतीस हजार सब, भेद प्रमाद प्रमानिए।
छट्ठे गुणथानकलौं कहे, त्याग आप थिर ठानिए ४२

अर्थ—विकथाके[1] २५ भेद हैं। उनसे २५ कषायोंका गुणा करनेसे ६२५ होते हैं। और ६२५ का पांच इन्द्रिय

---

१ विकथाके मूल भेद तो चार ही हैं, परन्तु उत्तरभेद मूलसहित २५ हैं–राज कथा, भोजन कथा, स्त्री कथा, चोर कथा, धन, वैर, परखंडन, देश, कपट, गुणबंध, देवी, निष्ठुर, शून्य, कंदर्प, अनुचित, भंड, मूर्ख, आत्मप्रशंसा, परवाद, ग्लानि, परपीड़ा, कलह, परिग्रह, साधारण, संगीत।

तथा मन अर्थात् छहसे गुणा करनेसे ३७५० होते हैं। इन्हें पांच निद्रासे गुणाकार करनेसे पौने उनईस हजार १८७५० भेद होते हैं। और इन भेदोंको स्नेह और मोह-रूप दोकी संख्यासे गुणाकार करनेसे ३७५०० होते हैं। इस तरह प्रमादके साढ़े सैंतीस हजार भेद होते हैं। ये प्रमाद छठे गुणस्थानतक रहते हैं। इनका त्याग करके अपने आपमें स्थिर होना चाहिये।

ज्योतिषमंडलकी ऊंचाई।

छप्पय।

सात सतक अरु नवै, तासुपर तारे राजैं।
ता ऊपर दस भान, असीपर चन्द विराजैं॥
च्यारि नखत बुध च्यारि, तीनिपर सुक्र बतायौ।
तीनि गुरू कुज तीनि, तीनिपर सनि ठहरायौ॥
इमि नवसै जोजन भूमितैं, जोतिषचक्र बखानिए।
इकसौ दस जोजन गगनमैं, फैलि रह्यौ परमा-
निए॥ ४३॥

अर्थ—पृथ्वीसे ७९० योजनकी ऊंचाईपर तारोंके विमान हैं। उनसे दश योजनकी ऊंचाईपर सूर्य और उससे ८० योजनकी ऊंचाईपर चन्द्रमा है। चन्द्रमासे ऊपर चार योजनपर नक्षत्र, चार योजनपर बुध, तीन योजनपर शुक्र, तीनपर गुरु, तीनपर मंगल, और तीनपर शनि; इस प्रकार क्रमसे एकके ऊपर एक हैं।

सब मिलाकर पृथ्वीसे ९०० योजनकी ऊंचाई तक ज्योतिष-चक्र है और आकाशमें उसका विस्तार एकसौ दश योजनका है। अर्थात् पृथ्वीसे ७९० योजनकी ऊंचाईसे उसका प्रारंभ होता है और ९०० योजनपर अन्त होता है। बीचमें ११० योजनमें उसका विस्तार है।

गुणस्थानोंका गमनागमन।

छप्पय।

मिथ्या मारग च्यारि, तीनि चउ पांच सात भनि।
दुतिय एक मिथ्यात, तृतिय चौथा पहला गनि॥
अव्रत मारग पांच, तीनि दो एक सात पन।
पंचम पंच सुसात, चार तिय दोय एक भन॥
छट्ठे पट इक पंचम अधिक,
सात आठ नव दस सुनौ॥
तिय अध ऊरध चौथे मरन,
ग्यार वार विन दो मुनौ॥ ४४॥

अर्थ—पहले मिथ्यात गुणस्थानसे ऊपर चढ़नेके चार मार्ग हैं। कोई जीव मिथ्यात्वसे तीसरे गुणस्थानमें जाता है, कोई चौथेमें, कोई पांचवेंमें और कोई एकदम सातवेंमें जाता है। दूसरे सासादन गुणस्थानसे एक ही मार्ग है अर्थात् वहांसे मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही जाता है। तीसरे गुणस्थानसे यदि ऊपर चढ़ता है, तो चौथे गुण-

स्थानमें जाता है और यदि नीचे पड़ता है, तो पहिलेमें आकर पड़ता है। चौथे अव्रतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानसे ऊपर नीचे जानेके पांच मार्ग हैं। नीचे पड़ता है, तो तीसरे दूसरे वा पहलेमें आता है और यदि ऊपर चढ़ता है, तो पांचवें वा सातवें गुणस्थानमें जाता है। पांचवें गुणस्थानसे भी पांच मार्ग हैं। ऊपर चढ़ेगा, तो सातवेंमें जायगा और नीचे पड़ेगा, तो चौथे तीसरे दूसरे या पहलेमें आवेगा। छट्ठे गुणस्थानसे छह मार्ग हैं। पांचवें गुणस्थानसे एक अधिक है अर्थात् ऊपर चढ़ेगा, तो सातवेंमें जायगा और नीचे उतरेगा तो, पांचवें चौथे तीसरे दूसरे वा पहलेमें आ जायगा। सातवें आठवें, नववें और दशवें गुणस्थानसे उपशमश्रेणीवालेके तीन मार्ग हैं। दो अधो ऊर्ध्वके अर्थात् इन गुणस्थानोंसे जीव नीचे पड़ेगा, तो अनुक्रमसे एक एक उतरेगा, अर्थात् छठे, सातवें आठवें और नववेंमें आवेगा और ऊपर चढ़ेगा, तो अनुक्रमसे एक एक ऊपर चढ़ेगा, अर्थात् आठवें नववें दशवें और ग्यारहवेंमें जावेगा। और तीसरा मार्ग मृत्युके समयका है। ऐसा नियम है कि, इन गुणस्थानोंमें यदि जीव मरण करे, तो मृत्युके समय उसका चौथा अव्रत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान हो जाय। ग्यारहवें गुणस्थानसे बारहवेंमें जानेके मार्गको छोड़कर दो मार्ग हैं। अर्थात् इस गुणस्थानवाला जीव बारहवें गुणस्थानमें नहीं चढ़ सकता। नीचे उतरेगा, तो दशवेंमें आवेगा, और मृत्युके समय इसका भी चौथा गुणस्थान हो जायगा।

क्षपक वा क्षायकश्रेणीवाला जीव नीचे नहीं पड़ता है। ऊपर चढ़ता है, तो ग्यारहवें गुणस्थानमें नहीं जाता है, दशवेंसे बारहवेमें पहुंच जाता है। और बारहवें-के अन्त तथा तेरहवेंके प्रारंभमें केवलज्ञान प्राप्त करके चौदहवें गुणस्थानमें जाता है और उसके अन्तमें मुक्त हो जाता है।

चौवीस तीर्थंकरोंके शरीरका वर्ण।

छप्पय।

पुहुपदंत[1] प्रभु चंद, चंद सम सेत विराजै।
पारसनाथ सुपास, हरित पन्नामय छाजै॥
वासुपूज्य अरु पदम, रकत माणिकद्युति सोहै।
मुनिसुव्रत अरु नेमि, स्याम सुरनरमन मोहै॥
बाकी सोलै कंचन वरन, यह विवहार शरीरथुति।
निहचै अरूप चेतन विमल, दरसग्यानचारित्त जुत॥ ४५॥

अर्थ—पुष्पदन्त और चन्द्रप्रभ भगवानके शरीरका वर्ण चन्द्रमाके समान सफेद है, पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथका हरे पन्नेके समान रंग है, वासुपूज्य और पद्म-

---

1 द्वौ कुन्देन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविन्द्रनीलप्रभौ। द्वौ बन्धूकसमप्रभौ जिन-वृषौ द्वौ च प्रियङ्गुप्रभौ। शेषा षोडशजन्ममृत्युरहिता. सन्तप्तहेमप्रभास्तेसज्ज्ञान-दिवाकरा सुरनताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः॥

प्रभका लालमाणिककी प्रभा जैसा है, मुनिसुव्रत और नेमिनाथका सांवला (नीलमणि सरीखा) है, जिसे देखकर देवों और मनुष्योंका मन मोहित हो जाता है, और शेष १६ तीर्थंकरोंका वर्ण सोनेकी कांतिके समान है। तीर्थंकरोंके शरीरकी यह स्तुति व्यवहारसे है। निश्चयसे विचार किया जाय, तो वे रूपरहित हैं, चैतन्यमय हैं, निर्मल हैं, और क्षायिकदर्शन क्षायिक ज्ञान और क्षायिकचारित्र (स्वरूपाचरण) संयुक्त हैं। *

---

* चरचाशतककी अनेक प्रतियोंमें निम्नलिखित छप्पय और भी पाया जाता है। मालूम नहीं यह मूलका है या प्रक्षिप्त है,—

गोम्मटसारका मंगलाचरण।

छप्पय।

वंदौं नेमिजिनेंद, नमौं चौवीस जिनेसुर।
महावीर वंदामि, वंदि सब सिद्ध महेसुर॥
सुद्ध जीव प्रणमामि, पंचपद प्रणमौं सुख अति।
गोमटसार नमामि, नेमिचँद आचारज निति॥
जिन सिद्ध सुद्ध अकलंकवर, गुणमणिभूषण उदयधर।
कहुं वीस परूपन भावसौं, यह मंगल सब विघनहर॥४६॥

अर्थ—श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरको नमस्कार है, चौवीसों तीर्थंकरोंको नमस्कार है, महावीर भगवानकी वन्दना करता हूं, सम्पूर्ण सिद्ध महेश्वरोंकी वन्दना करता हूं, शुद्ध आत्माको प्रणाम करता हूं, पंचपदोंको अर्थात् पंचपरमेष्ठीको प्रणाम करता हूं, गोम्मटसार ग्रन्थको नमन करता हूं और नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्तीको निरन्तर नमस्कार करता हूं। ये आठों, जिनको कि नमस्कार करता हूं कैसे हैं?—जिन हैं, सिद्ध हैं, शुद्ध हैं, कलंकरहित हैं, वर (श्रेष्ठ) हैं, और गुणरूपी मणियोंके भूषणोंको उदित करनेवाले हैं। इन सबको नमस्कार करके भावपूर्वक वीस प्ररूपणाओंका वर्णन करता हूं। इस वर्णनरूपी कार्यसे यह मंगल सब विघ्नबाधाओंका नाश करनेवाला होगा।

पदविधि मंगल।

नमहुं नाम अरहंत, थुनहु जिनबिंब कलिलहर।
परमौदारिक दिव्य बिंब, निर्वाण अवनिपर॥
कहहु कल्यानककाल, भजहु केवल गुणग्यायक।
यह षटविधि निच्छेप, महा मंगल वरदायक॥
मंगल दुभेद मल जाय गल, मंगल सुख लहै जीयरा
यह आदि मध्य परजंतलौं, मंगल राखौ हीयरा॥

अर्थ—१ अरहंत भगवानका नाम लेकर नमस्कार करो (नाम निक्षेप), २ पापोंके हरण करनेवाले जिन भगवानके प्रतिविम्बोंका स्तवन करो (स्थापना निक्षेप), ३ तीर्थंकर भगवानके उत्कृष्ट औदारिक शरीरयुक्त दिव्य विम्वकी स्तुति करो (द्रव्य निक्षेप), ४ केवलियोंकी निर्वाण भूमियोंको–सम्मेदशिखर आदिको नमस्कार करो (क्षेत्रनिक्षेप), ५ भगवानके गर्भजन्मादि कल्याणक समयोंका कथन करो (कालनिक्षेप) और समस्त पदार्थोंका

इस पद्यके जिन आदि विशेषण गोम्मटसार ग्रन्थके भी हो सकते है। इनमें और सब विशेषणोंका अभिप्राय तो स्पष्ट ही है, एक 'गुणमणिभूषणउदयधर' में कुछ चौज है। 'गुणमणिभूषण' नाम 'चामुंडराय' का है। अर्थात् इन चामुंडरायके लिये जिसका उदय हुआ है, ऐसा गोम्मटसार ग्रन्थ।

श्रीगोम्मटसार ग्रन्थमें आचार्य नेमिचन्द्रने जो;

सिद्धं सुद्धं पणमिय जिणिंदवर णेमिचंदमकलंकं।
गुणरत्नभूसणुदयं जीवस्स परूवणं वोच्छं॥

यह मंगलाचरण किया है, उसका उक्त छप्पयमें भावानुवाद है।

ज्ञायक जो केवलगुण (ज्ञान) है, उसको भजो (भाव-निक्षेप)। इस तरह यह छह प्रकारका निक्षेप महामंगल-रूप है और इच्छित वर देनेवाला है। यहां 'मंगल' शब्दके अर्थ करते हैं— एक तो 'मं' अर्थात् दो प्रकारके अन्तरंग और बहिरंग मल वा पाप जिससे 'गल' (गालयति) अर्थात् गल जावें—नष्ट हो जावें और दूसरा 'मंग' अर्थात् सुख 'ल' (लाति) अर्थात् लाता है—जिससे जीव सुखको प्राप्त करता है। यह मंगल प्रत्येक कार्यके आदि मध्य और अन्त तक हृदयमें रखना चाहिये?

चौदह मार्गणामें पांच प्ररूपणा गर्भित हैं।

सवैया इकतीसा।

जीव समास परजापत मन वच स्वास,
इंद्रीकायमाहिं आव गतिमैं बखानिए।
कायबल जोगमाहिं इंद्री पांच ग्यानमाहिं,
आहार परिग्रह ए लोभमैं प्रवानिए॥
क्रोधमाहिं भय अरु वेदमाहिं मैथुन है,
ग्यान ग्यानमाहिं दर्शदर्शमाहिं जानिए।
पांचौं परूपना ए चौदहमैं गर्भित हैं,
गुनथान मारगना दोय भेद मानिए॥

अर्थ—जीवसमास, पर्याप्ति, मनप्राण, वचनप्राण, और श्वासोच्छासप्राण, ये इन्द्रीमार्गणामें और कायमा-

र्गणामें, आयुप्राण गतिमार्गणामें, काय बल योगमार्ग-णामें, पांचों इंद्रियां ज्ञानमार्गणामें, आहार संज्ञा और परिग्रह संज्ञा लोभकषायमार्गणामें, भयसंज्ञा क्रोधमा-र्गणामें, मैथुनसंज्ञा वेदमार्गणामें, ज्ञानोपयोग ज्ञानमा र्गणामें और दर्शनोपयोग दर्शनमार्गणामें गर्भित हैं। इसतरह पांचोंप्ररूपणा चौदह मार्गणाओंमें गर्भित हैं। सामान्यतासे गुणस्थान और मार्गणा ये दो ही भेद हैं। अभिप्राय यह कि विशेषतासे तो पांच प्ररूपणा, चौदह मार्गणा और गुणस्थान इस तरह वीस प्ररूपणा हैं, परन्तु जब पांच प्ररूपणाओंको मार्गणाओंमें गर्भित कर लेते हैं, तब केवल दो ही भेद रह जाते हैं।

वारह प्रसिद्ध पुरुषोंके नाम।

छप्पय।

वंदौं पारसनाथ, नमौं बल रामचंद वर।
कामदेव हनुवंत, प्रगट रावन मानी नर॥
दानेस्वर स्रेयांस, सीलतैं सीता नामी।
तप बाहूवलि नाव, भाव भरतेस्वर स्वामी॥
जग महादेव है रुद्रपद, कृष्ण नाम हरि जानिए।
'द्यानत'कुलकरमें नाभिनृप,भीम वलीभुज मानिए

अर्थ—तीर्थंकरोंमें तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी और बलभद्रोंमें नववें रामचन्द्र प्रसिद्ध हुए हैं। इन दोनों महात्माओंको नमस्कार करता हूं। कामदेवोंमें १८ वें

कामदेव हनुमान, मानी पुरुषोंमें आठवां प्रतिनारायण रावण, दानी पुरुषोंमें राजा श्रेयांस जिन्होंने कि आदि भगवानको इक्षुरसका आहार दिया था, शीलवती स्त्रियोंमें सीता, तपस्वियोंमें आदिनाथस्वामीके पुत्र बाहूवलि जिनके कि शरीरपर लताएँ चढ़ गई थीं, भाववान् पुरुषोंमें भरतचक्रवर्ती जिन्हें कि परिग्रह छोड़ते ही अन्तर्मुहूर्तमें केवलज्ञान प्राप्त हो गया था, रुद्रोंमें ग्यारहवां रुद्र महादेव, नव हरि अर्थात् नारायणोंमें नववें नारायण श्रीकृष्ण, चौदह कुलकरोंमें नाभिराजा और बलवती भुजावालोंमें अर्थात् पराक्रमियोंमें कुन्तीका पुत्र भीम (पांडव) बहुत प्रसिद्ध हुआ।

यों तो शलाका पुरुषोंमें सब ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु लोकमें उनमेंसे उक्त पुरुष बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं।

सम्पूर्ण द्वीपसमुद्रोंके चन्द्रमाओंकी गिनती।

सवैया इकतीसा।

जंबूदीप दोय लवनांबुधिमैं चारि चंद,
धातखंड बारै कालोदधि बियालीस हैं॥
पुष्करके भाग दोय ईधर बहत्तरि हैं,
ऊधै बारैसै चौसठि भासे जगदीस हैं॥
पुष्कर जलधि सार दो सत ग्यारै हजार,
आगैं आगैं चौगुनैं बखानैं निसदीस हैं।
जेते लाख तेते बले दूने दूने अधिके हैं,
सबमैं असंख चैताले बंदत मुनीस हैं॥५०॥

अर्थ—जम्बूद्वीपमें २, लवणसमुद्रमें ४, धातकी खंडमें १२ और कालोदधिमें ४२ चन्द्रमा हैं। आगे पुष्करद्वीप है। उसके दो भाग हैं। इधरके पहिले भागमें ७२ और उधरके दूसरे भागमें १२६४ चन्द्रमा हैं। ऐसा जगदीश अर्थात् जिनेन्द्र भगवानने कहा है। पुष्करद्वीपके आगे पुष्कर समुद्रमें ११२०० चन्द्रमा हैं और उसके आगे-समुद्रसे चौगुने समुद्रमें और द्वीपसे चौगुने द्वीपमें हैं। ढाई द्वीपसे आगेके द्वीप और समुद्र जो जितने लाख योजनके हैं, उनमें उतने ही वलय हैं और प्रत्येक वलयमें दो दो चन्द्रमा होते हैं। इसलिये वलयोंसे दूने दूने अधिक चन्द्रमा होते गये हैं। इन सब चन्द्रमा-ओंमें असंख्यात जिनचैत्यालय हैं। उनकी मुनिगण वन्दना करते हैं।

---

१ पूर्व पूर्व द्वीप और समुद्रके चन्द्रमाओंके प्रमाणसे उत्तरोत्तर द्वीप और समुद्रके चन्द्रमाओंका प्रमाण चौगुना चौगुना है। परन्तु इतना विशेष है कि उत्तर द्वीप और समुद्रके वलयोंके प्रमाणसे दूना प्रमाण उस चौगुनी संख्यामें और मिलाना चाहिये। जैसे पूर्व पुष्करसमुद्रके चन्द्रमाओंकी संख्या ११२०० है, जिसको चौगुना करनेसे ४४८०० हुए। इसमें उत्तरद्वीपके वलयोंके प्रमाण ६४ के दूने १२८ मिलानेसे उत्तरद्वीपके चन्द्रमाओंका प्रमाण ४४९२८ होता है। इसही प्रकार आगे जानना।

२ जम्बूद्वीपमें एक, लवण समुद्रमें दो, धातकी खंडमें छह, कालोदधिमें इक्कीस और पुष्करके पूर्वार्धमें छत्तीस वलय (परिधि) हैं। आगेके वलयोंके प्रमाणमें विशेपता है। पुष्करका उत्तरार्ध आठ लाख योजनका है; इसलिये उसमें आठ वलय हैं। पुष्करसमुद्र ३२ लाख योजनका है, इसलिये उसमें ३२ वलय हैं।

अधोलोकके चैत्यालयोंकी संख्या ।

कवित्त (३१ मात्रा) ।

चौसठि लाख असुर जिनमंदिर,
लाख चौरासी नागकुमार ।
हेमकुमार सुलाख बहत्तरि,
छह विध लाख छहत्तरि धार ॥
लाख छानवै वातकुमार,
पताललोक भावन दस सार ।
सात कोरि सब लाख बहत्तरि,
चैत्याले बन्दौं सुखकार ॥५१॥

अर्थ—असुरकुमार देवोंके भवनोंमें ६४ लाख, नाग कुमारोंके भवनोंमें ८४ लाख और हेमकुमारोंके भवनोंमें ७२ लाख अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं । आगे जो छह प्रकारके कुमार अर्थात् विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, मेघ-कुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार देव हैं, उनके भवनोंमें छिहत्तर छिहत्तर लाख और वायुकुमारोंके भवनोंमें ९६ लाख चैत्यालय हैं। इस प्रकार पाताल लोक-वासी दश प्रकारके देवोंके भवनोंमें सात करोड़ बहत्तर लाख जिनमंदिर हैं। उनकी मैं वन्दना करता हूं। वे सुखके देनेवाले हैं। अर्थात् उनके स्मरण, वन्दनसे पुण्यबंध होता है और पुण्यबन्धसे सुख प्राप्त होता है ।

मध्यलोकके चैत्यालय ।

छप्पय ।

पंचमेरुके असी, असी वक्षार विराजैं ।
गजदंतनपै बीस, तीस कुलपर्वत छाजैं ॥
सौ सत्तर वैतार धार, कुरुभूमि दसोत्तर ।
इष्वाकार पहार, चार चव मानुपोत्रपर ॥
नंदीसुर बावनि रुचिकमैं, चार चार कुंडल सिखर ।
इम मध्यलोकमैं चारिसै, ठावन वंदौं विघनहर ॥

अर्थ—मध्यलोकमें ४५८ अकृत्रिम जिनचैत्यालय हैं। उनका विवरण इस प्रकार है:—ढाई द्वीपमें पांच मेरुपर्वत हैं और प्रत्येक मेरुपर सोलह सोलह चैत्यालय हैं । इस तरह पंचमेरुके ८० । एक एक मेरुके पूर्व पश्चिम विदेहक्षेत्रोंमें सोलह सोलह वक्षार पर्वत हैं और प्रत्येक पर्वतपर एक एक मन्दिर है। इस तरह सब वक्षार पर्वतोंके ८०। एक एक मेरु संबंधी चार चार गजदन्तपर्वत हैं । इनपर भी एक एक चैत्यालय है। इस तरह गजदन्तोंके २० । एक एक मेरुसंबंधी छह छह कुलाचल हैं; उनपर ३० । एक एक मेरुसंबंधी चौंतीस चौंतीस वैताढ्य पर्वत हैं, उनपर १७०। एक एक मेरुसम्बन्धी देवकुरु और उत्तरकुरु नामक दो दो भोगभूमियां हैं; वहांपर १०, इष्वाकार पर्वतपर ४, मानुषोत्तर पर्वतपर ४, नन्दीश्वरद्वीपमें ५२, रुचिक द्वीपके रुचिक पर्वतपर ४ और कुंडलद्वीपके कुंडलगिरिपर

४; इस तरह ६८। इन सब ४५८ चैत्यालयोंकी मैं वन्दना करता हूं। ये सब विघ्नोंके हरण करनेवाले हैं।

ऊर्ध्वलोकके अकृत्रिम चैत्यालय।

सवैया इकतीसा।

प्रथम बत्तीस दूजें अट्ठाईस तीजैं बारे,
चौथैं आठ पांचैं छट्ठैं चार लाख स्यात हैं।
सातैं आठमैं पचास नौमैं दसमैं चालीस,
ग्यारैं बारैं छै हजार चारौं सत सात हैं॥
अधो एक सत ग्यारै मध्य एक सत सात,
ऊरध इक्यानू नव नवोत्तरैं जात हैं।
पंचोत्तरे चवरासी लाख सत्तानू हजार,
तेईस चैत्याले सब बन्दौं अघघात हैं॥ ५३॥

अर्थ—पहले सौधर्मस्वर्गमें ३२ लाख, दूसरे ईशानस्वर्गमें २८ लाख, तीसरे सनत्कुमारस्वर्गमें १२ लाख, चौथे माहेन्द्रस्वर्गमें ८ लाख, पांचवें ब्रह्म और छठे ब्रह्मोत्तरस्वर्गमें ४ लाख, सातवें लांतव और आठवें कापिष्टस्वर्गमें ५० हजार, नववें शुक्र, दशवें महाशुक्र स्वर्गमें ४० हजार, ग्यारहवें बारहवें सतार सहस्रार स्वर्गमें ६ हजार, तेरहवें चौदहवें पन्द्रहवें सोलहवें आनत प्राणत आरण और अच्युत इन चारों स्वर्गोंमें ७००, अधोग्रैवेयकमें १११, मध्यग्रैवेयकमें १०७, ऊर्ध्वग्रैवेयकमें ९१, नवोत्तर अर्थात् अनुदिश विमानोंमें ९ और पंचोत्तर विमानोंमें ५; इस तरह

ऊर्ध्वलोकके सब मिलाकर जो ८४९७०२३ जिन चैत्या-लय पापोंके नाश करनेवाले हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूं।

सौधर्म इन्द्रकी सेनाकी गणना ।

इंद्रसेन सात हाथी घोरे रथ प्यादे बैल,
गंधरव नृत्य सात सात परकार हैं।
आदि चौरासी हजार आगें षट दूने दूने,
एक कोरि छै लाख अड़सठ हजार हैं ॥
एते गज तेते तेते छह भेद सबके ते,
सात कोरि छियालीस लाख निरधार हैं ।
सहस छिहत्तर हैं औ एक अवतार न्योग,
पुन्यकर्म भोग भोग मोखकौं सिधार हैं ॥५४॥

अर्थ—सौधर्मस्वर्गके इन्द्रकी सेना सात प्रकारकी है-हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादा, बैल, गन्धर्व और नर्तक। और इस सात प्रकारकी सेनाके सात सात प्रकार और भी हैं। आदिकी अर्थात् पहली सेनामें ८४ हजार हाथी हैं और आगेकी छह सेनाओंमें इनसे दूने दूने हाथी हैं। इस हिसाबसे सब मिलाकर १०६६८००० हाथी हैं। जितने ये हाथी हैं, उतने ही घोड़े रथ आदि हैं। सब सेनाकी गिनती हाथी घोड़े आदि मिलाकर ७४६७६००० है। इस सौधर्म इन्द्रका केवल एक अवतार धारण करनेका नियोग होता है। पुण्यकर्मके उदयसे प्राप्त हुए इस महान् वैभवको

भोगकर यह यहांसे च्युतहोकर एक मनुष्य जन्म धारण करके मोक्षको सिधारता है।

इन्द्रियोंके विषयकी सीमा।

छप्पय।

फरस चारिसै धनुष, असेनीलौं दुगुना गनि।
रसना चौसठि धनुष, घ्रान सौ तेइंद्री भनि॥
चख जोजन उनतीस, सतक चौवन परवानो।
कान आठसै धनुष, सुनै सेनी सो जानो॥
नव जोजन घ्रान रसन फरस,
कान दुवादस जोजना।
चख सैंतालीस सहस दुसै,
तेसठि देखै जिन भना॥ ५५॥

अर्थ—एकेन्द्रिय जीवके एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। इसकी स्पर्शन इन्द्रियका विषय ४०० धनुष्य का होता है। आगे दोइन्द्रियसे लेकर असेनी पंचेन्द्री तकके जीवोंके जो स्पर्शन इंद्रिय होती है उसका विषय दूना दूना है। अर्थात् दोइंद्रियकी स्पर्शन इन्द्रियका विषय ८००, तेइन्द्रियका १६००, चौइंद्रियका ३२०० और असेनी पंचेंद्रियका ६४०० धनुष है। दो इंद्रिय जीवोंके स्पर्शनके सिवा रसना (जीभ) इंद्रिय और होती है। इसका विषय ६४ धनुषका है। आगे तेइंद्रिय चौइंद्रिय और पंचेंद्रिय जीवोंकी रसनाका विषय भी दूना दूना अर्थात्

क्रमसे १२८, २५६ और ५१२ धनुषका है । तेइंद्रिय जीवोंके पहली दो इंद्रियोंके सिवा एक घ्राण (नाक) इंद्रिय और होती है। इसका विषय १०० धनुष है और चौ इंद्रिय तथा असेनी पंचेंद्रिय जीवोंकी घ्राण इंद्रियका विषय पूर्वसे दूना दूना अर्थात् २०० और ४०० धनुषका है। चौ इंद्रिय जीवोंके पहले कही हुई तीन इंद्रियोंके सिवा एक नेत्र इंद्रिय और होती है । इसका विषय २९५४ योजनका है। इससे दूना अर्थात् ५९०८ योजन असेनी पंचेन्द्रियकी नेत्र इंद्रियका विषय है। असेनी पंचेंद्रियके चौ इंद्रियसे एक कान इंद्रिय और अधिक होती है। अर्थात् जो सुनता है सो असेनी पंचेंद्रिय है। इसका विषय ८०० धनुषका है। पंचेंद्रिय जीवोंकी इंद्रियोंका विषय इस प्रकार है;—घ्राण (नाक) का ९ योजन, रसना, स्पर्श और कानका बारह बारह योजन और नेत्रद्वारा पंचेंद्रिय जीव ४७२६३ योजनतक देख सकता है। इस प्रकार जिन भगवानने कहा है।

यहां इंद्रियोंके विषयकी उत्कृष्ट सीमा बतलाई है। इसका अभिप्राय यह है कि एकेन्द्रियादि जीवोंकी इंद्रियां अधिकसे अधिक इतने दूरतकके पदार्थोंका ज्ञान कर सकतीं हैं। इससे आगेके पदार्थोंका वे विषय नहीं कर सकती हैं। पंचेन्द्रिय जीवोंमें पांचों इंद्रियोंका उत्कृष्ट विषय जो ऊपर कहा है, वह चक्रवर्तीके होता है, अन्य सामान्य जीवोंके नहीं।

केवली समुद्धात करते हैं, तब उनके
कौन कौन योग होते हैं ?

सवैया इकतीसा ।

पहलैं समैमैं करैं दंड आठमैं संवरैं,
परदेस आतम औदारिक प्रमानिए ।
दूसरैं कपाट होंय सातमैं संवरैं सोय,
संवरैं प्रतर छट्ठे मिस्र जोग जानिए ॥
तीसरैं प्रतर, चौथैं पूरत सरव लोक,
पूरन संवरैं पाँचैं कारमान मानिए ।
आठ समैमाहिं जात केवल समुदघात,
निर्जरा असंख गुनी देव सो बखानिए ॥ ५६ ॥

अर्थ—मूल शरीरके विना छोड़े जीवके प्रदेशोंके शरीरसे वाहर निकलनेको समुद्धात कहते हैं। चौदहवें गुणस्थानके अन्तमें जब आठ समय बाकी रह जाते हैं, तब गोत्र वेद और नामकर्मकी स्थिति आयुकर्मकी स्थितिके समान करनेके लिये केवली भगवानके आत्मप्रदेश शरीरसे वाहर निकलते हैं और पहिले समयमें दंडके आकार होते हैं जब कि जीव सुमेरुपर्वतके आठ मध्य प्रदेशोंपर आ-

१ जिन मुनियोंको आयुके छह महीना शेष रहनेके पीछे केवलज्ञान होता है, वे मुनि नियमसे समुद्धात करते हैं। परन्तु जिनके छह महीनेसे पहले केवलज्ञान हो जाता है, वे समुद्धात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं—कुछ नियम नहीं है।

त्माके आठ मध्य प्रदेश स्थापित करके वाकीके आत्म-प्रदेशोंको तिरछे शरीराकार रखता हुआ ऊपर नीचेकी तरफ वातवलयोंको छोड़कर चौदह राजूतक विस्तृत करता है। दूसरे समयमें किवाड़ सरीखे होते हैं जब कि वे प्रदेश उत्तर दक्षिण की तरफसे शरीराकार वने रहकर पूर्व, पश्चिमकी तरफ वातवलयके सिवा लोकपर्यंत पसर जाते हैं। तीसरे समयमें प्रतररूप होते हैं जब कि जो प्रदेश दूसरे समयमें उत्तर दक्षिणकी तरफ शरीराकार वने रहे थे वे उत्तर दक्षिणकी तरफ भी वातवलयके सिवा लोक पर्यंत फैल जाते हैं और चौथे समयमें लोकपूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सारे लोकमें व्याप्त हो जाते हैं। फिर पांचवें समयमें प्रतररूप, छट्ठे समयमें कपाटरूप और सातवें समयमें दंडरूप होकर आठवेंमें संकुचित होकर शरीरमें समा जाते हैं। इन आठ समयोंमें आत्माके औदारिक कायादि कौन कौन योग होते हैं वे इस सवैयामें वतलाये हैं:— जव आत्माके प्रदेश पहिले समयमें दंड-रूप होते हैं और आठवेंमें संकुचित होते हैं, उस समय औदारिक काययोग होता है। दूसरे समयमें जव कपाट-रूप होते हैं और सातवेंमें कपाट अवस्थासे संकुचित होते हैं तथा छट्ठे समयमें जव प्रतरका संवरण होता है, तव औदारिकमिश्र योग होता है। तीसरे समयमें जव प्रतर रूप होते हैं, चौथेमें जव सारे लोकको पूर्ण करते हैं और पांचवेंमें जव लोकपूर्ण अवस्थाका संवरण करते हैं, तव कार्माण योग होता है। इस तरह आठ समयोंमें केवल-

समुद्धात होता है, जिनमें असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। ऐसा जिनदेवने कहा है।

मिथ्यातीकी मुक्ति न हो, सम्यक्तीकी हो।

एक समैमाहिं एकसमैपरवद्ध वँधै,
एक समै एकसमैपरवद्ध झरै है।
वर्गना जघन्यमैं अभव्यसौं अनंतगुनी,
उतकिष्ट सिद्धकौ अनंत भाग धरै है॥
जैसैं एक गास खाय सात धात होय जाय,
तैसैं एक सातकर्मरूप अनुसरै है।
यौं न लहै मोख कोइ जाके उर ग्यान होइ,
एकसमै वहु खोइ सोइ सिव वरै है॥५७॥

अर्थ—जवतक मिथ्यात्व परिणाम रहते हैं, तवतक आत्मा कर्मोंसे नहीं छूट सकता है। जव सम्यक् परिणाम होते हैं, तव ही वह कर्मोंसे मुक्त होता है। इसी वातको वतलाते हैं:— मिथ्याती जीव एक समयमें एक-समय-प्रवद्ध कर्मवर्गणाओंका वंध करता है और एक समयमें एक-समयप्रवद्ध वर्गणाओंको ही झड़ाता है। (एक समयमें जितने कर्मपरमाणुओंका वंध होता है, उतनेको समयप्रवद्ध कहते हैं। इन समयप्रवद्ध कर्मपरमाणुओंमें अनन्त कर्मवर्गणायें होती हैं।) जघन्य वर्गणाका प्रमाण

१ अनन्तके अनन्तभेद हैं।

अभव्य जीवोंकी संख्यासे अनन्त गुना और उत्कृष्ट वर्गणाका सिद्धजीवसंख्याके अनन्तवें भाग होता है। जिस तरह एक तरहके ग्रासका भोजन करनेसे परिपाकमें उससे रक्त, मांस, मज्जा, वीर्य आदि सात धातुएँ बनती हैं, उसी प्रकार मिथ्यात्व परिणामोंसे बांधी हुई एक कर्म-वर्गणाओंका सातकर्मरूप परिणमन होता है। इस लिये कोई जीव यों ही सहज मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। क्योंकि इस तरह कर्मोंका आवागमन बराबर होता रहता है। कर्म बराबर सत्तामें बने रहते हैं। जिसके हृदयमें आत्म शरीरादि संबंधी भेद-विज्ञान हो जाता है, वह समकिती जीव भेदज्ञानके बलसे प्रत्येक समय बंधकी अपेक्षा अधिक कर्मोंको क्षय करता है अर्थात् उसके बंध थोड़ा होता है और निर्जरा बहुत होती है, इसलिये वही, मुक्ति सुन्दरीका वरण करता है।

आठ कर्मोंके आठ दृष्टान्त।

देवपै पर्यौ है पट रूपकौ न ग्यान होय,
जैसैं दरबान भूप-देखनौं निवारै है।
सहत लपेटी असिधारा सुखदुखकार,
मदिरा ज्यौं जीवनकौं मोहिनी विथारै[1] है।
काठमैं दियौ है पाँव करै थितिकौ सुभाव,
चित्रकार नाना नाम चीतकै[2] समारै है।

---

[1] विस्तृत करता है—मोहनीका विस्तार करता है। [2] चित्रित करके—बना करके।

चक्री ऊंच नीच घरै भूप दीयौ मनै करै,
एई आठ कर्म हरै सोई हमैं तारै है ॥ ५८ ॥

अर्थ—देवकी मूर्तिपर यदि कपड़ा पड़ा हुआ हो, तो जिस तरह उसका ज्ञान नहीं होता है—उसका रूप नहीं दिखता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणी कर्मका परदा पड़नेसे आत्माका ज्ञान गुण ढँक जाता है। जिस तरह दरवान अर्थात् पहरेदार राजाका दर्शन नहीं करने देता है, उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म आत्माके दर्शनगुणका दर्शन नहीं होने देता है। जिस तरह शहदमें लिपटी हुई तलवारकी धार चाटनेसे मीठी लगती है और साथ ही जीभको काट डालती है, उसी प्रकारसे वेदनी कर्म आत्माको सुखी, दुःखी करता है। यह कर्म आत्माके अव्याबाध गुणका घात करता है। जिस तरह शराब जीवोंपर मोहनीका अर्थात् वेहोशीका (अज्ञानका बावलेपनका) विस्तार करती है, उसी प्रकारसे मोहनी कर्म आत्माको मोहित कर डालता है। इस कर्मके संयोगसे जीव परपदार्थोंमें इष्ट तथा अनिष्टकी कल्पना करता है और तद्रूप आचरण करता है। अर्थात् इससे जीवके सम्यक्त्व और चारित्र गुणका घात होता है। जिस तरह चोरका पैर काठमें दे देनेसे वह काठ उसकी स्थिति करता है—उसको कहीं हिलने चलने नहीं देता है, उसी प्रकारसे आयु कर्म जीवकी भवभवमें स्थिति करता है। जब तक एक शरीरकी आयु पूरी नहीं हो

१ चक्रवाला अर्थात् कुँभार। २ घड़ता है–बनाता है। ३ रोकता है।

जाती है, तब तक जीव दूसरे शरीरमें नहीं जासकता है। इससे अवगाह गुणका घात होता है। जिस प्रकार चित्र-कार नानाप्रकारके चित्र बनाकर उनके जुदा जुदा नाम रखता है, उसी प्रकारसे नाम कर्म एकेन्द्रियादि नामवाले शरीर बनाता है। यह कर्म आत्माके सूक्ष्मत्व गुणका घात करता है। जिस प्रकारसे कुम्हार ऊँचे नीचे अर्थात् छोटे बड़े वर्तन बनाता है, उसी प्रकारसे गोत्र कर्म ऊँच नीच कुलमें जीवको उत्पन्न करता है। और जिस प्रकार भंडारी राजाको दान करनेसे रोकता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म दान लाभ भोग और उपभोगमें रुकावट करता है। इन आठों कर्मोंका जिन्होंने हरण किया है, वे ही (सिद्धपरमेष्ठी) हमको तारनेमें समर्थ हैं।

चौदह गुणस्थानोंमें सत्तावन आस्रव।

पचपन अरु पचास तेतालिस,
छ्यालिस सैंतिस चौविस जान।
बाइस ठाइस सोलह दस अरु,
नव नव सात अंत न बखान ॥
चौदै गुणथानकमैं इह विध,
आस्रवद्वार कहे भगवान।
मूल चार उत्तर सत्तावन,
नास करौ धरि संवरग्यान ॥ ५९ ॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें ५५ आस्रव होते

हैं। आहारक और आहारकमिश्र ये दो नहीं होते हैं। दूसरे सासादन गुणस्थानमें ५० आस्रव होते हैं-पांच मिथ्यात्व, एक आहारक और एक आहारकमिश्रयोग ये सात नहीं होते हैं। तीसरे मिश्र गुणस्थानमें ४३ आस्रव होते हैं-१४ आस्रव नहीं होते हैं:—५ मिथ्यात्व, ४ अनन्तानुवन्धी, २ आहारक और औदारिकमिश्र वैक्रियकमिश्र, कार्माण ये तीन। चौथे अव्रत गुणस्थानमें ४६ आस्रव होते हैं-ऊपरके ४३ और अंतके ३ मिश्र मिलाकर। पांचवें देशविरति गुणस्थानमें ३७ आस्रव होते हैं। ऊपरके ४६ मेंसे ४ अप्रत्याख्यानकषाय, ४ योग, और एक त्रसवध इस तरह ९ घटा देना चाहिए। छट्ठे प्रमत्तसंयममें २४ आस्रव होते हैं:— ४ संज्वलन कषाय, ९ हास्यादि नोकषाय, ९ योग और २ आहारक। सातवें अप्रमत्तमें २२ होते हैं:—४ संज्वलनकषाय, ९ योग और ९ हास्यादि नोकषाय। आठवें अपूर्वकरणमें ऊपरके ही २२ आस्रव होते हैं। नववें अनिवृत्तिकरणमें १६ आस्रव होते हैं:— ९ योग, ४ संज्वलन कषाय और ३ वेद। दशवें सूक्ष्मसाम्परायमें १० आस्रव होते हैं:— ९ योग और १ सूक्ष्म लोभ। ग्यारहवें उपशान्तकषायमें इन्हीं ९ योगोंका आस्रव होता है, वारहवें क्षीणमोहमें भी इन्हीं ९ योगोंका आस्रव होता है और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थानमें ३ काययोग, २ वचनयोग और २ मनोयोग इस तरह सातका आस्रव होता है और अन्तके चौदहवें अयोगकेवली गुणस्थानमें आस्रव सर्वथा

नहीं होता है। इस तरह भगवान केवलीने बतलाया है कि कौन कौन गुणस्थानोंमें कितने कितने आस्रवद्वार होते हैं। आस्रवके मूल भेद चार[1] हैं और उत्तर भेद ५७ हैं। हे भव्यो, संवरतत्त्वको जानकर इनके नाश करनेका प्रयत्न करो।

चौदह गुणस्थानोंमें १२० प्रकृतियोंका बन्ध।

इकसौ सतरै एक एकसौ,
चौहत्तर सतहत्तर मान।
सतसठ तेसठ उनसठ अठावन,
बाइस सतरै दसमैं थान॥
ग्यारम बारम तेरम साता,
एक बंध नहिं अंत निदान।
सब गुणथानक बँधैं प्रकृति इम,
निहचैं आप अबंध पिछान॥ ६०॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका बंध होता है। कर्मोंकी सब मिलाकर १४८ प्रकृतियां हैं। इनमेंसे स्पर्शादिक २० प्रकृतियोंका स्पर्शादिक ४ में और ५ बंधन और ५ संघातोंका पांच शरीरोंमें अन्तर्भाव हो जाता है। इस कारण भेद-विवक्षासे सब १४८ और अभेद

---

१. आस्रवके १ द्रव्यबन्धका निमित्तकारण, २ द्रव्यबन्धका उपादानकारण, ३ भावबन्धका निमित्तकारण और ४ भावबन्धका उपादानकारण ये चार भेद हैं।

विवक्षासे १२२ प्रकृतियां हैं। इनमेंसे अनादि मिथ्यादृष्टी जीवके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति इन दोनोंका वन्ध नहीं होता है। क्योंकि इन दोनोंकी सत्ता सम्यक्त्व परिणामोंसे मिथ्यात्व प्रकृतिके तीन खंड करनेपर होती है। इसलिये अनादि मिथ्यादृष्टीकी वन्धयोग्य प्रकृतियां कुल १२० हैं। इनमेंसे *मिथ्यात्व-गुणस्थानमें तीर्थंकर प्रकृति*, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग इन तीन प्रकृतियोंका वंध नहीं होता है। क्योंकि इन तीनोंका वंध सम्यग्दृष्टियोंके ही होता है। इस तरह पहले गुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है।

दूसरे सासादन गुणस्थानमें 'एक एकसौ' अर्थात् १०१ प्रकृतियोंका वंध होता है। अर्थात् ऊपर कहीं हुई ११७ प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, हुंडकसंस्थान, नपुंसकवेद, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, असंप्राप्तासृपाटिका-संहनन, एकेन्द्रियजाति, विकलत्रय तीन, स्थावर, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन सोलह प्रकृतियोंका वंध नहीं होता है।

तीसरे मिश्रगुणस्थानमें ७४ प्रकृतियोंका वंध होता है। दूसरे गुणस्थानमें जिन १०१ प्रकृतियोंका वंध होता है, उनमेंसे अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, न्यग्रोध संस्थान, स्वाति संस्थान, कुब्जक संस्थान, वामन संस्थान, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलित संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, स्त्रीवेद,

नीचगोत्र, तिर्यंगगति, तिर्यंगगत्यानुपूर्वी, तिर्यंगायुः और उद्योत इन २५ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे शेष रहीं ७६। इनमेंसे मनुष्यायु और देवायु ये दो और घटा देनी चाहिये। क्योंकि इस गुणस्थानमें किसी भी आयुकर्मका बंध नहीं होता है। इस तरह ७४ प्रकृतियोंका बन्ध होता है।

चौथे गुणस्थानमें ७७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपर कही हुई ७४ और मनुष्यायु, देवायु तथा तीर्थंकर ये तीन, कुल ७७।

पांचवें गुणस्थानमें ६७ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। चौथे गुणस्थानकी ७७ प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, और वज्रवृषभनाराच संहनन ये दश व्युच्छिन्न-प्रकृतियां घटा देनेसे ६७ रह जाती हैं।

छट्ठे गुणस्थानमें ६३ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। ऊपरके ६७ मेंसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ इन ४ को घटा देनेसे ६३ रहती हैं।

सातवें गुणस्थानमें ५९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है। छट्ठे गुणस्थानकी ६३ बन्धप्रकृतियोंमेंसे अस्थिर, अशुभ, असाता, अयशःकीर्ति, अरति, और शोकके घटानेसे शेष रहीं ५७, इनमें आहारकशरीर और आहारक अंगोपांग इन दोके मिलानेसे ५९ होती हैं।

आठवें गुणस्थानमें ५८ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। ऊपरकी ५९ मेंसे देवायुको घटानेसे ५८ प्रकृतियां बंध-योग्य रहती हैं।

नववें गुणस्थानमें २२ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। ऊपरकी ५८ मेंसे नीचे लिखीं ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंको घटानेसे २२ रहती हैं:—निद्रा, प्रचला, तीर्थंकर, निर्माण, प्रशस्तविहायोगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, रूप, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, हास्य, रति, जुगुप्सा और भय।

दशवें गुणस्थानमें १७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। ऊपरकी २२ मेंसे पुरुषवेद, और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभको घटानेसे १७ रहती हैं।

ग्यारहवें, वारहवें, और तेरहवें गुणस्थानमें केवल एक सातावेदनीय प्रकृतिका बंध होता है। दशवेंमें जिन १७ प्रकृतियोंका बंध होता है, उनमेंसे ज्ञानावरणीयकी ५ दर्शनावरणीयकी ४, अन्तरायकी ५, यशःकीर्ति, और उच्चगोत्र इन १६ को घटानेसे एक सातावेदनीय रह जाती है। अन्तके चौदहवें गुणस्थानमें किसी भी प्रकृतिका वन्ध नहीं होता है। वह बंधरहित अवस्था है। इस

तरह सब गुणस्थानोंकी बन्धप्रकृतियां बतलाई। निश्चय नयसे आत्माको कर्मबन्धसे रहित जानना चाहिये।

चौदह गुणस्थानोंमें १२२ प्रकृतियोंका उदय।

इक सौ सतरै इक सौ ग्यारै,
सौ अरु सौ, चौ सत्तासीय।
इक्यासी छैहत्तरि बेहत्तरि
छयासठ अरु साठ उदीय ॥
उनसठ सत्तावन ब्यालिस अरु
बारै प्रकृति उदै है जीय।
चौदै गुणथानककी रचना,
उदयभिन्न तुव सिद्ध सुकीय ॥ ६१ ॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका उदय होता है। १२२ मेंसे सम्यक्प्रकृति, सम्यग्मिथ्यात्व, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकरप्रकृति इन पांच प्रकृतियोंका उदय इस गुणस्थानमें नहीं होता। दूसरे गुणस्थानमें १११ प्रकृतियोंका उदय होता है। पहले गुणस्थानकी ११७ मेंसे मिथ्यात्व, आताप, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नरकगत्यानुपूर्वी इन ६ प्रकृतियोंका उदय नहीं होता है। तीसरे गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। दूसरे गुणस्थानकी १११ प्रकृतियोंमेंसे अनन्तानुबन्धी ४, एकेन्द्रियादिक ४, और स्थावर

१, इन ९ व्युच्छिन्नि प्रकृतियोंके घटानेसे शेप रहीं १०२, उनमेंसे नरकगत्यानुपूर्वीके विना (क्योंकि यह दूसरे गुणस्थानमें घटाई जा चुकी है) शेपकी तीन आनुपूर्वी घटानेसे (क्योंकि तीसरे गुणस्थानमें मरण न होनेसे किसी भी आनुपूर्वीका उदय नहीं है) शेष रहीं ९९ और एक सम्यग्मिथ्यात्वका उदय यहां मिला। इस तरह इस गुणस्थानमें १०० प्रकृतियोंका उदय होता है। चौथे गुणस्थानमें 'सौ चौ' अर्थात् १०४ प्रकृतियोंका उदय होता है। ऊपरकी १०० प्रकृतियोंमेंसे व्युच्छिन्नप्रकृति सम्यग्मिथ्यात्वके घटानेपर रहीं ९९, इनमें चार आनुपूर्वी और एक सम्यक्प्रकृति इन पांचके मिलानेसे १०४ हुईं। पांचवें गुणस्थानमें ८७ प्रकृतियोंका उदय होता है। पूर्वकी १०४ प्रकृतियोंमेंसे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, नरकायु, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति इन सत्तरह व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे ८७ रहती हैं। छट्ठे गुणस्थानमें ८१ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ८७ मेंसे प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यग्गति, तिर्यगायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे शेष रहीं ७९, इनमें आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग मिलानेसे ८१ प्रकृतियां होती हैं। सातवेंमें ७६ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ८१ मेंसे आहारक

शरीर, आहारक अंगोपांग, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिके घटानेसे ७६ प्रकृतियां रहती हैं। आठवेंमें ७२ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ७६ मेंसे सम्यक्त्व प्रकृति, अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका ये तीन संहनन, इन चारका उदय नहीं होता है। नववेंमें ६६ का उदय होता है। पिछली ७२ मेंसे हास्य, रति, आरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन छहको घटानेसे ६६ रहती हैं। दशवें गुणस्थानमें ६० प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ६६ मेंसे स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन छहको घटानेसे ६० रहती हैं। ग्यारहवें गुणस्थानमें ५९ का उदय होता है। पिछली ६० मेंसे एक संज्वलन लोभका उदय यहां घट जाता है। बारहवेंमें ५७ का उदय होता है। पिछली ५९ में से वज्रनाराच और नाराच घटानेसे ५७ होती हैं। तेरहवें गुणस्थानमें ४२ प्रकृतियोंका उदय होता है। पिछली ५७ मेंसे ज्ञानावरणीयकी ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणीयकी ४, निद्रा और प्रचला इस तरह १६ व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे ४१ रहीं, इनमें तीर्थंकरकी अपेक्षासे एक तीर्थंकर प्रकृतिको मिलानेसे ४२ हुईं। चौदहवें गुणस्थानमें १२ का उदय रहता है। पिछली ४२ मेंसे इन तीस व्युच्छिन्न प्रकृतियोंके घटानेसे १२ रहती हैं;—वेदनीय, वज्रवृषभनाराच, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगो-

पाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध, स्वाति, कुब्जक, वामन, हुंडक, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघुत्व, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक। वे बारह प्रकृतियां ये हैं:—वेदनीय, मनुष्यगति, मनुष्यायु, पंचेंद्रियजाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर और उच्चगोत्र। इस तरह चौदह गुणस्थानोंकी रचना है। निश्चयसे तेरा निज आत्मा इन सब कर्मोंके उदयसे भिन्न सिद्धस्वरूप है।

चौदह गुणस्थानोंमें १२२ प्रकृतियोंकी उदीरणा।

इक सौ सतरै इक सौ ग्यारै, सौ सौ चौ सत्तासी जान।
इक्यासी तेहत्तरि उनहत्तरि तेसठि सत्तावन मान॥
छप्पन चौवन उनतालिस तेरमैं अंत नाहीं परवान।
यह उदीरणा चौदै थानक, करै ग्यानबल सो तू जान

अर्थ—६१ वें कवित्तके अर्थमें चौदह गुणस्थानोंमें जितनी जितनी प्रकृतियोंका उदय बतलाया है, ठीक उतनी उतनी ही प्रकृतियोंकी उदीरणा होती है और वह इस कवित्तमें बतलाई गई है। अन्तर सातवें, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवेंमें केवल ३ प्रकृतियोंका पड़ता है और तेरहवेंमें ९ का। वह इस तरहसे कि वहां सातवेंमें ७६ प्रकृतियोंका उदय होता है, और यहां ७३ की उदीरणा होती है। क्योंकि चौदहवें गुणस्थानमें उदय तो १२ प्रकृतियोंका रहता है, परन्तु उदीरणा वहां

नहीं है। इस लिये उन १२ प्रकृतियोंको तेरहवें गुणस्थानकी ३० प्रकृतियोंमें मिलानेसे उनकी संख्या ४२ होगई। जिनमेंसे तीन साता, असाता और मनुष्यायु तो छट्ठे गुणस्थानमें उदीरित होती हैं और शेष ३९ की तेरहवेंमें उदीरणा होती है। बीचके सातवें, आठवें, नववें, दशवें, ग्यारहवें और बारहवेंमें इन्हीं तीन प्रकृतियोंके कम हो जानेसे उदीरित प्रकृतियोंकी संख्या क्रमसे ७३, ६९, ६३, ५७, ५६, ५४ हो जाती है।

हे भव्य, तुझे जानना चाहिए कि चौदह गुणस्थानोंमें यह उदीरणा ज्ञानके बलसे होती है। इस लिए ज्ञानका सम्पादन कर।

चौदह गुणस्थानोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता।

सवैया इकतीसा।

पहले सौ अड़ताल दूजेमें सौ पैंताल,
तीजेमाहिं सौ सैंताल चौथेमें अठतालसौ।
पांचें गुन सौ सैंताल छट्ठें सातें आठें नौमें,
दसमें ग्यारमें उपसमी है छयालसौ॥
आठें नौमें सौ अड़तीस दशमें इकसौ दोय,
बारमें इकसौ एक आगें पंद्रे टाल सौ।
तेरें चौदमें पिचासी सत्ता नास अविनासी,
नमौं लोक घन ऊरध राजू है सैंतालसौ॥६३॥

अर्थ—बाँधे हुए कर्म जबतक उदयमें नहीं आते हैं किंतु ज्योंके त्यों बद्ध बने रहते हैं तब तक उस अवस्थाको सत्ता कहते हैं । पहले और चौथे गुणस्थानमें १४८ प्रकृतियोंकी सत्ता है। दूसरे गुणस्थानमें तीर्थंकर, आहारक शरीर, और आहारक अंगोपांग इन तीनको छोड़कर १४५ की सत्ता है। तीसरेमें तीर्थंकर प्रकृतिको छोड़कर और पांचवेंमें नरकायुको छोड़कर १४७ प्रकृतियोंकी सत्ता है। छट्ठे सातवेंमें और उपशमश्रेणीके आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवेंमें नरकायु और तिर्यगायुको छोड़कर १४६ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले आठवें, नववें गुणस्थानोंमें ४ अनंतानुबंधी, ३ मिथ्यात्व और ३ आयु (देव पशु और नारक) को छोड़कर १३८ की सत्ता है। क्षपकश्रेणीवाले दशवेंमें १०२ की सत्ता है। नवमेंमें जो १३८ का सत्त्व है, उसमेंसे ये ३६ व्युच्छिन्न प्रकृतियां घटानेसे १०२ होती हैं:—तिर्यग्गति १, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी १, विकलत्रय ३, निद्रानिद्रा १, प्रचलाप्रचला १, स्त्यानगृद्धि १, उद्योत १, आतप १, एकेन्द्रिय १, साधारण १, सूक्ष्म १, स्थावर १, अप्रत्याख्यानावरण ४, प्रत्याख्यानावरण ४, नोकषाय ९, संज्वलन क्रोध १, मान १, माया १, नरकगति १ और नरकगत्यानुपूर्वी । बारहवेंमें १०१ प्रकृतियोंकी सत्ता है । पिछली १०२ मेंसे एक सूक्ष्मलोभकी सत्ता घट जाती है। आगे तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें 'पंद्रै टालसौ'-सौमेंसे पन्द्रह कम अर्थात् ८५ प्रकृतियोंकी सत्ता है । उपर्युक्त १०१ मेंसे ज्ञानावरणीय

की ५, अन्तरायकी ५, दर्शनावरणीयकी ४, निद्रा १ और प्रचला १ ऐसे १६ घटानेसे ८५ रहती हैं। चौदहवें गुणस्थानमें अंतके समयसे पूर्व समयमें ७२ और अन्तमें १३ की सत्ता नाश करके अविनाशी सिद्ध होते हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। वे १४७ राजू घनाकार लोकके ऊर्ध्व भागमें विराजमान होते हैं।

अन्तर्मुहूर्तके जन्म मरणोंकी गिनती।

भू जल पावक पौन साधारण पंच भेद,
सूच्छम वादर दस परतेक ग्यार हैं।
छैहजार बारै बारै जनम मरन धरै,
वे ते चौ इंद्री असी साठ चालिस धार हैं॥
चौइस पंचेंद्री सब छासठ सहस तीन,
सै छत्तीस, सै सैंतीस तेहत्तर सार हैं।
छत्तीससै पचासी स्वास अधिक तीजा अंस,
नमौ नाथ मोहि सब दुखसौं उधार हैं॥६४॥

अर्थ—अलब्धपर्याप्तक जीवोंके अन्तर्मुहूर्तमें कितने जन्म मरण होते हैं, यह इस पद्यमें बतलाया है। जो जीव एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर पाता है, किंतु मुहूर्तके भीतर ही-पर्याप्ति पूर्ण होनेसे पहले ही-मर जाता है, उसे अलब्ध-पर्याप्तक या लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय,

अग्निकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय इन पांचके सूक्ष्म और वादरके भेदसे दश भेद हुए। इनमें एक प्रत्येक वनस्पतिकाय मिलानेसे ग्यारह भेद हुए। इन ग्यारहों लब्ध्यपर्याप्तक इतरनिगोद जीवोंके अन्त-र्मुहूर्तमें छह हजार बारह बारह जन्म मरण होते हैं। दो इंद्रिय जीवोंके ८०, तेइंद्रियके ६०, चौइंद्रीके ४० और पंचेंद्री जीवोंके चौवीस चौवीस जन्म मरण होते हैं। इस तरह सब मिलाकर ६०१२+११+८०+६०+४०+२४=६६ ३३६ जन्म मरण अन्तर्मुहर्तमें होते हैं। ३७७३ स्वासका[1] एक प्रमाण मुहूर्त होता है। एक स्वासमें अठारह वार जन्म मरण होता है, इसलिये ६६३३६ जन्म मरणमें ६६३३६/१८=३६८५ १/३ स्वास हुए। और इन ३६८५ १/३ स्वासोंका एक अन्तर्मुहूर्त हुआ। मैं अपने नाथ अर्थात् वीतरागदेवको नमस्कार करता हूं। मेरा इन जन्म मरणके दुःखोंसे वे ही उद्धार करेंगे।

घाती कर्मोंकी ४७ प्रकृतियां।

मति सुत औधि मनपरजै केवलग्यान,
पंच आवरन ग्यानावरनी पंचभेद हैं।
चक्खु औ अचक्खु औधि केवलदरस चारि,
आवरन चारि निद्रा निद्रानिद्रा खेद हैं॥

---

१ जो बालक न हो, वृद्ध न हो, रोगी न हो, आलसी न हो, ऐसे स्वस्थ सुखी मनुष्यके स्वास इस प्रसंगमें लिये गये हैं।

प्रचला प्रचलाप्रचला थानगृद्धि नौ भेद,
दर्सनावरनी, मोह अठाईस भेद हैं।
दान लाभ भोग उपभोग बल अंतराय,
पांच सब सैंतालीस घातिया निषेद हैं ॥६५॥

अर्थ—ज्ञानावरणीयकी ५, दर्शनावरणीयकी ९, मोहनीयकी २८ और अन्तरायकी ५ इस तरह घाती कर्मोंकी सब मिलाकर ४७ प्रकृतियां हैं। इन सबको जुदा जुदा बतलाते हैं। ज्ञानको आवरण करनेवाले ज्ञानावरणीयके पांच भेद हैं—१ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ३ मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। दर्शनावरणीयके ९ भेद हैं—१ चक्षुर्दर्शनावरण, २ अचक्षुर्दर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण (ये चार आवरण), ५ निद्रा, ६ निद्रानिद्रा, ७ प्रचला, ८ प्रचलाप्रचला और ९ स्त्यानगृद्धि। मोहनीयके २८ भेद हैं (ये आगेके पद्यमें बतलाये हैं)। अन्तराय के ५ भेद हैं—१ दानान्तराय, २ लाभान्तराय, ३ भोगान्तराय, ४ उपभोगान्तराय और ५ वीर्यान्तराय। घाती कर्मोंकी ये ४७ प्रकृतियां निषिध्य हैं—इनको आत्मासे जुदा करना चाहिये।

मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृतियां।

अनंतानुबंधी औ अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी,
संज्वलन चारौं क्रोध मान माया लोभ हैं।

हास्य रति अरति सोक भय जुगुपसा,
नारी नर षंढ पचीस चारितको छोभ है ॥
मिथ्यात समै मिथ्यात समै प्रकृतिमिथ्यात,
तीनौं दर्सनमोह दर्सनकौ चोभ है।
अठाईस मोहनीय जीवनिकौं मोहत हैं,
नासै जथाख्यात सम्यक छायक सोभ है ॥६६॥

अर्थ—मोहनीय कर्मके २८ भेद हैं, जिनमेंसे २५ चारित्रमोहनीयके हैं और ३ दर्शनमोहनीयके हैं। १ अनन्तानुबंधी-क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ, ५ अप्रत्याख्यानावरणीय-क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ, ९ प्रत्याख्यानावरणीय-क्रोध, १० मान, ११ माया १२ लोभ, १३ संज्वलन-क्रोध, १४ मान, १५ माया, १६ लोभ, १७ हास्य, १८ रति, १९ अरति, २० शोक, २१ भय, २२ जुगुप्सा (ग्लानि), २३ पुरुषवेद, २४ स्त्रीवेद, २५ नपुंसकवेद ये पच्चीस चारित्रमें क्षोभ करनेवाले चारित्रमोहनीयके भेद हैं। १ मिथ्यात्व, २ सम्यग्मिथ्यात्व, और ३ सम्यक्प्रकृति ये तीन दर्शनमें चुभनेवाले दर्शनमोहके भेद हैं। इस मोहनीय कर्मके नाश होनेपर यथाख्यात संयम अथवा क्षायिक चारित्रकी प्राप्ति होती है। इन गुणोंसे जीव शोभायमान होता है।

अघाती कर्मोंकी १०१ प्रकृतियां और आठ कर्मोंकी स्थिति।

साता औ असाता दोइ वेदनी नरक पसु

नर सुर आव च्यारि ऊंच नीच गोत है।
नामकी तिरानू एक सत एक अघातिया,
आदि तीन अंतराय थिति तीस होत है॥
नाम गोत बीस मोहनी सत्तरि कोराकोरी,
दधि आवकी सागर तेतीस उदोत है।
वेदनी चौवीस घरी सोलै नाम गोत पांचौं,
अंतर मुहूरत, विनासैं ग्यानजोत है॥ ६७॥

अर्थ—वेदनीय कर्मकी साता औ असाता ये २ प्रकृतियां, आयुकर्मकी नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु और देवायु ये ४ प्रकृतियां, गोत्र कर्मकी उच्चगोत्र और नीचगोत्र ये २ और नामकर्मकी ९३ इस तरह चार अघाती कर्मोंकी सब मिलाकर १०१ प्रकृतियां हैं।

आदिके तीन कर्म अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, और वेदनीय और अन्तका अन्तराय; इन चारोंकी उत्कृष्ट स्थिति ३० कोड़ाकोड़ी सागरकी है। नाम कर्मकी और गोत्र कर्मकी २० कोड़ाकोड़ी सागरकी, मोहनीयकी ७० कोड़ाकोड़ी सागरकी और आयु कर्मकी ३३ सागरकी उत्कृष्ट स्थिति है। वेदनीय कर्मकी जघन्य स्थिति २४ घड़ी अर्थात् बारह मुहूर्त, नाम कर्म और गोत्र कर्मकी सोलह सोलह घड़ी, और शेष ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय और आयुकर्म इन पांचोंकी अन्तर्मु-

हूर्त है । ज्ञानज्योति अर्थात् ज्ञानी महात्मा इन सबका नाश करते हैं।

नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां।

तन बंधन संघात वर्ण रस जात पंच,
संसथान संहनन षट आठ फास हैं।
गति आनुपूरवी है चारि दो विहाय गंध,
अंग तीनि पैंसठि ये त्रस थूल भास हैं॥
पर्यापति थिर सुभ सुभग प्रतेक जस,
सुसुर आदेय दो दो निरमान स्वास हैं।
अपघात परघात अगुरु लघु आताप,
उदोत तीर्थंकरकौं बन्दौं अघनास है॥६८॥

अर्थ—नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियां हैं, जिनमेंसे ६५ पिंडप्रकृतियां हैं और २८ अपिंडप्रकृतियां हैं। पिण्ड-प्रकृतियां उनको कहा है कि जो एक एक भेदमें अनेक अनेक पाई जाती हैं। जिनके जुदा जुदा स्वतंत्र नाम गिनाये गये हैं वे अपिंडप्रकृति कही जाती हैं। पहले अपिंड प्रकृतियां बतलाते हैं। पांच तन अर्थात् शरीर कर्म-१ औदारिक शरीर, २ वैक्रियिक शरीर, ३ आहारक शरीर, ४ तैजस शरीर, और ५ कार्म्मण शरीर। पांच बन्धन कर्म—१ औदारिक बन्धन, २ वैक्रियिक बन्धन, ३ आहारक बन्धन, ४ तैजस बन्धन, ५ कार्माण

बन्धन। पांच संघात हैं:—१ औदारिक शरीर संघात, २ वैक्रियिक शरीर संघात, ३ आहारक संघात, ४ तैजस संघात, ५ कार्माण संघात। पांच वर्णकर्म हैं:—१ काला, २ पीला, ३ लाल, ४ नीला, ५ सफेद। पांच रसकर्म हैं:—१ खट्टा, २ मीठा, ३ कड़ुआ, ४ तीखा, ५ कसैला। पांच जाति कर्म हैं—१ एकेंद्रिय जाति, २ दोइंद्रिय जाति, ३ तेइंद्रिय जाति, ४ चौइंद्रिय जाति ५ पंचेंद्रिय जाति। छह संस्थान कर्म हैं:—१ समचतुरस्र संस्थान, २ न्यग्रोध परिमंडल, ३ वामन, ४ स्वातिक, ५ कुब्जक, ६ हुंडक। छह संहनन कर्म हैं:—१ वज्र वृषभनाराच संहनन, २ वज्रनाराच संहनन, ३ नाराच संहनन, ४ अर्द्धनाराच संहनन, ५ कीलक संहनन, ६ असंप्राप्तासृपाटिक संहनन। आठ स्पर्शकर्म हैं:—१ ठंडा, २ गरम, ३ हलका, ४ भारी, ५ नरम, ६ कठोर, ७ चिकना, ८ खुरदरा। चार गति कर्म हैं:—१ नरक गति, २ तिर्यंच गति, ३ मनुष्य गति, ४ देवगति। चार आनुपूर्वी कर्म हैं:—१ नरकगत्यानुपूर्वी, २ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, ३ मनुष्यगत्यानुपूर्वी, ४ देवगत्यानुपूर्वी। दो विहायोगति कर्म हैं:—१ प्रशस्तविहायोगति २ अप्रशस्तविहायोगति। दो गंधकर्म हैं:—१ सुगंध, २ दुर्गंध। तीन अंगोपांग कर्म हैं:—१ औदारिक अंगोपांग, २ वैक्रियिक अंगोपांग और ३ आहारक अंगोपांग। अब २८ अपिंड प्रकृतियां बतलाते हैं—१ त्रस, २ स्थावर, ३ स्थूल, ४ सूक्ष्म, ५ पर्याप्त, ६ अपर्याप्त, ७ स्थिर, ८ अस्थिर, ९ शुभ, १० अशुभ,

११ सुभग, १२ दुर्भग, १३ प्रत्येक, १४ साधारण, १५ यशःकीर्ति, १६ अयशःकीर्ति, १७ सुस्वर, १८ दुःस्वर, १९ आदेय, २० अनादेय, २१ निर्माण, २२ श्वासोच्छ्वास, २३ अपघात, २४ परघात, २५ अगुरुलघु, २६ आतप, २७ उद्योत और तीर्थंकर । तीर्थंकरदेवको मैं नमस्कार करता हूं।

जम्बूद्वीपके पूर्व पश्चिमका वर्णन ।

जंबूदीप एक लाख मेरु दस ही हजार,
भद्रसाल दो वन सहस चवालीसके ।
बाकी छ्यालीस आधौं आध दोनौं ही विदेह,
देवारन्य वन उनतीस से बाईसके ॥
तीनौं नदी पौनैं चारि सत चारौं ही वख्यार,
दो हजार आठौं ही विदेह वच ईसके ।
सत्तरै सहस सात सत तीनि जोजनके,
नमौं चारि तीर्थंकर स्वामी जगदीसके ॥६९॥

अर्थ—जंबूद्वीप पूर्व पश्चिम एक लाख योजन[1] चौड़ा है। इसके वीचमें सुदर्शन मेरु है, जिसका चारौं तरफ गोलाकार विस्तार दशहजार योजनका है। इसके पूर्व-पश्चिम भद्रशाल नामका एक एक वन है, जो प्रत्येक बावीस हजार योजनके विस्तारवाला है, इस तरह वन

[1] महायोजन जो कि दो हजार कोशका होता है।

दोनोंका विस्तार चवालीस हजार योजनमें है। इस तरह मेरु और दोनों भद्रशालवनोंका विस्तार मिलाकर ५४ हजार योजन हुआ। इसको एक लाखमेंसे घटाया, तो बाकी छियालीस हजार योजन रहे। इनमें तेईस तेईस हजारके दोनों विदेह हैं। इस तरह जम्बूद्वीपका एक लाख योजन पूर्व पश्चिम विस्तार है।

अब भद्रशाल वनसे लवणसमुद्रके तटतक जो विदेह क्षेत्र है, उसका विशेष वर्णन करते हैं:—विदेह क्षेत्रमें लवण समुद्रके तटसे लगा हुआ देवारण्य वन है, जो २९२२ योजनका है। और तीन नदियां हैं, जो प्रत्येक एकसौ पच्चीस पच्चीस योजनकी हैं। तीनों मिलाकर ३७५ योजनकी हैं। चार वक्षारगिरि नामके पर्वत हैं, जो दो हजार योजनके हैं अर्थात् प्रत्येक पांच पांचसौ योजनका है। आठ विदेह क्षेत्र हैं, जिनका विस्तार १७७०३ योजनका है। प्रत्येक क्षेत्र २२१२$\frac{७}{८}$ योजनका है। इस पूर्व-विदेहके वन, नदी, पर्वत और क्षेत्रोंकी चौड़ाईका जोड़ तेईस हजार योजन होजाता है।

इसी तरह पश्चिम विदेहकी भी रचना है। नदी पर्वतादिकोंका विस्तार सब ऐसा ही है। नामादिका भेद है। नीलवन्त पर्वतपर केसरी नामका ह्रद (तालाब) है। उसमेंसे सीता नदी दक्षिणमुख होकर निकली है। वह माल्यवंत गजदन्त पर्वतमेंसे होकर, सुदर्शनमेरुका आधा चक्कर देती हुई, पूर्ववाहिनी होकर, पूर्व विदेहके बीचमेंसे लवण-

समुद्रमें जाकर मिली है। इस कारण पूर्वविदेहके आठ क्षेत्रोंके सोलह क्षेत्र हो गये हैं। ऐसे ही पश्चिम विदेहमेंसे सीतोदा नदी वही है और उससे पश्चिम विदेहके भी सोलह क्षेत्र हो गये हैं। दोनों विदेहोंके सब मिलाकर ३२ क्षेत्र हैं।

पूर्व विदेहमें श्रीसंधर और युग्मंधर तथा पश्चिमविदेहमें वाहु और सुवाहु इस तरह चार तीर्थंकर विद्यमान हैं। उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। वे तीनों लोकोंके स्वामी हैं।

जम्बूद्वीपके दक्षिण उत्तरका वर्णन।

जंबूदीप दच्छिन उत्तर लाख जोजनकौ,
भाग एकसौ नव्वै एक भरत भाइए।
दोय हिमवन सैल चारि हेमवत खेत,
महा हिमवन आठ सोलै हरि गाइए॥
बत्तीस निषध ए तिरेसठ उधै त्रेसठ,
बीचमैं विदेह भाग चौंसठ बताइए।
भाग पांच सै छवीस कला छह उन्निसकी,
अठत्तर चैत्यालय सदा सीस नाइए॥ ७०॥

अर्थ—जम्बूद्वीपका दक्षिण उत्तर विस्तार एक लाख योजनका है। इसके १९० भाग करनेसे जो एक भाग

होता है, उतना भरतक्षेत्र है। यह एक भाग ५२६ योजन और छह कला (अपूर्ण उन्नीस)के बराबर है। भरत-क्षेत्रका आकार धनुप सरीखा है। इसके उत्तरमें हिमवान नामका पर्वत है। वह १९० मेंसे दो भाग प्रमाण है। अर्थात् उसका दक्षिण उत्तर विस्तार भरतक्षेत्रसे दूना १०५२ योजन १२ कला (बारह अपूर्ण उन्नीस) है। हिमवानसे आगे (उत्तरमें) हैमवत क्षेत्र है। वह चार भाग प्रमाण अर्थात् २१०५ योजन और ५ कला है। उसके आगे महाहिमवान पर्वत आठ भाग प्रमाण ४२१०।१० योजन है। महाहिमवानसे उत्तरमें (आगे) हरिक्षेत्र है, वह सोलह भाग प्रमाण ८४२१।१ योजन है। आगे निपधपर्वत है, वह बत्तीस भाग प्रमाण अर्थात् १६८४२।२ योजन है। इस तरह लवणसमुद्रसे विदेह क्षेत्रतक सब मिलाकर ६३ भाग ३३१५७।१७ हुए। इतना ही विस्तार मेरुसे उत्तरकी ओर विदेहसे लवण समुद्र-तक समझना चाहिये। दोनोंका जोड़ हुआ १२६ भाग प्रमाण। अब रह गया बीचका विदेहक्षेत्र, सो उसका दक्षिण उत्तर विस्तार १९० में ६४ भाग प्रमाण अर्थात् ३३६८४।४ है। तब ६३+६३+६४=१९० या ३३१५७। १७+३३१५७।१७+३३६८४।४=१०००००योजन हो गये। एक भाग ५२६ योजन ६ कलाका होता है। एक योज-नकी १९ कला मानी हैं। जम्बूद्वीपमें वीतराग देवके ७८ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। उन्हें निरन्तर मस्तक नवाना चाहिये—नमस्कार करना चाहिये।

अधोलोकके श्रेणीवद्ध बिलोंकी संख्या ।

सात नर्क भूमि उनचास पाथरे निवास,
इंद्रक भी उनचास बीचमाहिँ बिले हैं।
पहलौ सीमंत चारि दिसा सेनी उनचास,
चारि विदिसामें अठताली भेद निले हैं ॥
आठ दिस सेनीबंध तीनिसै अठासी भए,
आगें आठ आठ घटे अंत चारि मिले हैं।
सब छ्यानवै सै चारि जोजन असंख धारि,
दया धरैं धर्म करैं तिनौं दुख गिले हैं ॥७१॥

अर्थ—नरक भूमियां सात हैं। उन सबमें ४९ पाथड़े (उत्तरभेद) हैं। प्रत्येक पाथड़ेमें कूपके आकारका गोल एक एक इन्द्रक है, इस लिये उनकी संख्या भी ४९ है। उनके बीचमें बिल हैं। पहली भूमिमें १३ पाथड़े हैं, उनमें पहिला सीमन्तक नामका पाथड़ा या पटल है। उसकी चारों दिशाओंमें उनचास उनचास और और विदिशाओंमें अड़तालीस अड़तालीस श्रेणीवद्ध बिल हैं। सो दिशाओंके १९६ और विदिशाओंके १९२ इस तरह आठों दिशाओंके मिलकर ३८८ बिल हुए। यह एक पटलका वर्णन हुआ। शेष ४८ पटल या पाथड़े रहे, सो उनके बिलोंकी संख्या क्रमसे आठ आठ घटती हुई है। अर्थात् दूसरेकी ३८०, तीसरेकी ३७२, चौथेकी ३६४ और आगे

इसी तरह आठ आठ घटती हुई चली गई है, सो अन्तके पटलमें चार विल रह गये हैं । इस अन्तके पटलका नाम अवस्थान इन्द्रक है। इसकी विदिशाओंमें विल नहीं हैं, चार दिशाओंमें ही एक एक विल है। इन सव उनचासों पटलोंके विलोंकी संख्या ९६०४ है और उनका विस्तार असंख्यात योजन है। जो जीव दयाभाव धारण करते हैं और धर्म करते हैं, वे इन नरकोंके महान् दुःखोंसे वचते हैं।

ऊर्ध्वलोकके श्रेणीवद्ध विमान ।

ऊरध तिरेसठ पटल कहे आगममैं,
तेसठ ही इंद्रक विमान वीच जानिए।
पहलौ जुगल ताके पहलेकौ रिजु नाम,
जाकी चारि दिसा सेनि वासठ प्रमानिए॥
चारौं दोसै अड़तालीस आगैं घटे चारि चारि,
अंत रहे चारि ऊंचे चारि ठीक ठानिए।
सेनीबंध उत्तर से सोलै जोजन असंख,
सिद्ध बारै जोजनपै ध्यानमाहिं आनिए ७२

अर्थ—ऊर्ध्वलोकमें अर्थात् स्वर्गोंमें ६३ पटल हैं। प्रत्येक पटलके वीचमें एक एक इंद्रक विमान है। अर्थात् इन्द्रक विमानोंकी संख्या भी ६३ है। पहले जुगलके अर्थात् सौधर्म ईशान स्वर्गके ३१ पटल हैं। उनमेंके

पहले पटलका नाम ऋजु विमान है। इस विमानकी चारों दिशाओंमें बासठ बासठ श्रेणीवद्ध विमान हैं अर्थात् सब दिशाओंके मिलाकर २४८ विमान हुए। यह एक पटलका वर्णन हुआ। इसके ऊपर जो शेष ६२ पटल हैं, उनके विमानोंकी संख्या ऊपर ऊपर क्रमसे चार चार कम होती गई है अर्थात् दूसरे पटलमें २४४, तीसरेमें २४०, और चौथेमें २३६ इस क्रमसे है। अन्तके सर्वार्थसिद्धि पटलमें केवल चार विमान हैं और उसके नीचेके ६२ वें आदित्य नामक पटलमें भी चार ही हैं। सम्पूर्ण पटलोंके सम्पूर्ण विमानोंकी संख्या ७८१६ है। वे असंख्यात योजनके विस्तारवाले हैं। अन्तके सर्वार्थ-सिद्धि पटलसे १२ योजनकी ऊंचाईपर अनन्त सिद्ध भगवान् विराजमान् हैं, उनको ध्यानमें लाना चाहिये अर्थात् उनका निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

लवणोदधिके १००८ कलशोंका वर्णन।

लौनोदधि बीच चारि दिसामाहिं चारि कूप,
कहे हैं मृदंग जेम तिनिकौ प्रमान है।
पेट और ऊंचे एक एक लाख जोजनके,
नीचैं औ मुख ताकौ दस हजार मान है॥
चारि विदिसामैं चारि पेट और ऊंचे दस,
हजार एक नीचे औ मुखकौ बखान है।

अन्तर दिसा हजार पेट ऊंचे हैं हजार,
नीचैं और मुख सौके धन्य जैनग्यान है ७२

अर्थ—जम्बूद्वीपके आसपास जो लवणोदधि समुद्र है, उसके बीचमें चारों दिशाओंमें चार कूप हैं। उनका आकार मृदंगके समान है। उनका पेट अर्थात् मध्यकी चौड़ाई और ऊंचाई एक एक लाख योजनकी है तथा वे नीचे तलीमें और मुंहपर दश दश हजार योजनके विस्तार-वाले हैं। दिशाओंके सिवाय विदिशाओंमें भी चार कूप हैं। उनका पेट और ऊँचाई दश दश हजार योजनकी और नीचेका तथा मुखका विस्तार हजार हजार योज-नका है। दिशा और विदिशाओंके बीचमें आठ अन्तर दिशाएँ हैं, उनमें एक हजार कूप हैं। अर्थात् प्रत्येक अन्तर दिशामें सवा सवा सौ कूप हैं। इनके पेटोंका विस्तार और ऊँचाई हजार हजार योजनकी है और नीचेका तथा मुंहका विस्तार सौ योजनका है। इस तरह सब मिलाकर १००८ कूप या वड़वानल हैं। ऐसे ऐसे परोक्ष विषयोंका बतलानेवाला जिन भगवानका ज्ञान धन्य है।

त्रेसठ इंद्रक विमान।

पैंतालीस लाखकौ है इंद्रक रिजुविमान,
सर्वारथ सिद्ध अंत एक लाखका कहा।
चवालीस घटे हैं तेसठमैं बासठि ठौर,
ऊंचे ऊंचे एक एक केता घटती लहा॥

सत्तर हजार नौसै सतसठ जोजन है,
तेइस अधिक भाग इकतीसका गहा।
तेसठ इंद्रक नाम तेसठ ही जिनधाम,
बंदौं मनवचकाय तिनकी सोभा महा ॥७४॥

अर्थ—पहले युगलका जो ऋजुविमान नामका पटल है, वह ४५ लाख योजनका है और अन्तका सर्वार्थसिद्धि नामका पटल एक लाख योजनका है। स्वर्गलोकके सारे पटलोंकी संख्या ६३ है। इस तरह ६२ स्थानोंमें ४४ लाख क्रमसे कम हुए हैं। तो अब देखना चाहिये कि एक दूसरे से कितने कितने कम होते गये हैं:—४४ लाखमें यदि ६२ स्थानोंका भाग दिया जायगा, तो यह कमी मालूम हो जायगी। $\frac{४४०००००}{६२}$=७०९६७ $\frac{२३}{३१}$ अर्थात् सत्तर हजार नौ सौ सड़सठ और एक योजनके ३१ भागोंमेंसे २३ भाग; इतना इतना विस्तार ऊपर ऊपरके पटलोंका कम होता गया है। इन ६३ इन्द्रकोंमें ६३ ही अकृत्रिम जिनमंदिर हैं, जो अतिशय शोभायुक्त हैं। उनकी मैं मन वचन कायसे वन्दना करता हूं।

१२० प्रकृतियोंका बंध और उदय।

देव गति आव आनुपूरवी प्रकृति तीन,
वैक्रियक अंग आहारक अंग चार हैं।
अजस ए आठौं ऊंचैं बंधैं नीचैं उदै दैंहि,
संजुलन लोभ विना पंदरै निहार हैं॥

हास रति भै गिलानि नर-वेद नर-आव,
सूच्छम अपर्जापति साधारण धार हैं।
आतप मिथ्यात ए छवीस बंध उदैं साथ,
नीचैं बंध ऊंचैं उदै छीयासी विचार हैं॥७५॥

अर्थ—देवगति, देवायु, और देवगत्यानुपूर्वी, ये तीन; वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग ये चार और अजस; सब मिलाकर हुई आठ प्रकृतियां। ये आठों ऊपरके गुणस्थानोंमें बँधती हैं और नीचेके गुणस्थानोंमें उदय आती हैं। संज्वलन लोभको छोड़कर १५ कषाय अर्थात् अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध मान माया लोभ और संज्वलन क्रोध मान माया ये पन्द्रह और हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, पुरुषायु, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, आतप, और मिथ्यात्व ये ग्यारह इस तरह २६ प्रकृतियां जिस गुणस्थानमें बँधती हैं, उसीमें उदय आती हैं। इन २६ +८=३४ प्रकृतियोंको छोड़कर शेष जो ८६ प्रकृतियां हैं, उनका बंध नीचेके गुणस्थानोंमें होता है और उदय ऊंचेके गुणस्थानोंमें होता है।

हुंडकका पहले गुणस्थानमें, वामन, कुब्जक, स्वातिक, और न्यग्रोधपरिमंडलका दूसरे गुणस्थान पर्यन्त, और समचतुरस्रका आठवें गुणस्थानके छट्ठे भाग पर्यन्त, बन्ध

होता है । परन्तु उदय इन छहों संस्थानोंका तेरहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है ।

वज्रवृषभनाराचका चौथे गुणस्थानतक, वज्रनाराच, नाराच, अर्ध नाराच और कीलकका दूसरे गुणस्थानतक और असंप्राप्तासृपाटिकका बंध पहिले गुणस्थानमें है । और उदय अर्धनाराच, कीलक, स्फाटिकका सातवें गुणस्थानतक, नाराच, वज्रनाराचका ग्यारहवें तक और वज्रवृषभनाराचका तेरहवें गुणस्थानतक है ।

निर्माणका बंध आठवें गुणस्थानके छट्ठे भागतक और उदय तेरहवें गुणस्थानतक होता है ।

अप्रशस्तविहायोगतिका बंध दूसरे गुणस्थानतक और प्रशस्तविहायोगतिका आठवें गुणस्थानके छट्ठे भाग पर्यन्त होता है और उदय इन दोनोंका तेरहवें गुणस्थानतक होता है ।

उद्योतका बंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय पांचवें गुणस्थानतक होता है ।

अगुरुलघु, अपघात, परघात और स्वासोच्छ्वासका बन्ध आठवेंके छट्ठे भाग तक और उदय तेरहवें तक होता है ।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धिका बंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय छट्ठे तक होता है ।

नरक आयु, नरक गति और नरकगत्यानुपूर्वीका बंध पहिले गुणस्थानमें होता है और उदय चौथेतक होता है ।

तिर्यंच गति और तिर्यंच आयुका वन्ध दूसरे गुण-स्थानतक और उदय पांचवें गुणस्थान तक होता है।

तिर्यंच गत्यानुपूर्वीका बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय चौथे गुणस्थान पर्यन्त होता है।

मनुष्यगति और मनुष्यायुका वन्ध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त होता है।

एकेन्द्रिय, दोइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइन्द्रियका बंध पहले गुणस्थानमें होता है और उदय दूसरे गुणस्थान तक होता है।

औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांगका बंध चौथे गुणस्थानतक और उदय चौदहवेंके अन्तपर्यन्त है।

पंचेन्द्रियका बंध आठवें गुणस्थानके छट्ठे भागतक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

तैजस कार्माणका वन्ध आठवेंके छट्ठे भागतक है और उदय चौदहवेंके उपान्त्य समय तक है।

ज्ञानावरणकी ५ और दर्शनावरणकी ४ प्रकृतियोंका वन्ध दशवें पर्यन्त और उदय बारहवेंके अन्त चौदहवें समय तक होता है।

यशः कीर्ति और उच्च गोत्रका बंध दशवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थानके अन्त तक है।

सातावेदनीयका बंध तेरहवें गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

नीचगोत्रका बंध पहले गुणस्थानतक और उदय पांचवें गुणस्थान तक है।

असाता वेदनीयका बंध छट्ठे गुणस्थान तक और उदय बारहवें गुणस्थान तक है।

नपुंसक वेदका बंध पहले गुणस्थानमें है, और उदय नववें गुणस्थानके चौथे भागतक है।

स्त्रीवेदका बंध दूसरे गुणस्थानतक और उदय नववें गुणस्थानके चौथे भाग तक है।

संज्वलन लोभका बंध नववें गुणस्थान पर्यन्त और उदय दशवें गुणस्थान तक है।

अरति शोकका बंध छट्ठे गुणस्थान तक और उदय आठवें गुणस्थान तक है।

निद्रा प्रचलाका बन्ध आठवें गुणस्थानके पहले भाग तक और उदय ग्यारहवें तक है।

स्थावरका बंध पहले गुणस्थानमें और उदय दूसरे गुणस्थान तक है।

त्रस, बादर और पर्याप्तका बंध आठवेंके छठे भाग तक और उदय चौदहवें पर्यन्त है।

प्रत्येकशरीरका बन्ध आठवेंके छठे भागतक और उदय तेरहवें तक है।

अस्थिर अशुभका बन्ध छट्ठे तक और उदय तेरहवें तक होता है।

स्थिर, शुभ और सुस्वरका बंध आठवेंके छट्ठे भाग तक और उदय तेरहवें गुणस्थान तक है।

सुभग और आदेयका बंध आठवेंके छट्ठे भागतक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेयका बंध दूसरे गुणस्थान तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध चौथे गुणस्थानसे आठवेंके छट्ठे भाग तक और उदय चौदहवें गुणस्थान तक है।

पंचपरावर्तनका स्वरूप।

भाव परावर्तन अनंत भाग भवकाल,
भव परावर्तन अनंत भाग काल है।
काल परावर्तन अनन्त भाग खेत कह्यौ,
खेतकौ अनन्त भाग पुग्गल विसाल है॥
ताकौ आधौ नाम अर्ध पुग्गल परावर्तन,
फिरनौ रह्यौ है याहि ग्यानी ग्यान भाल है।
ताही समै सम्यक उपजिवेकौ जोग भयौ,
और कहा समकित लरकौंका ख्याल है॥७६॥

अर्थ—कर्मबंधोंके करनेवाले जितने प्रकारके भाव हैं, उन सबको मिथ्याती जीव क्रमपूर्वक जितने समयमें अनुभव करता है, उतने कालको एक भावपरावर्तन काल कहते हैं। इस भावपरावर्तनका जितना काल है,

उसका अनन्तवां भाग काल भवपरावर्तन का है। नरकगति तथा देवगतिका जघन्य आयु दशहजार वर्षका और उत्कृष्ट आयु तेतीससागरका; मनुष्यगति तिर्यंचगतिका जघन्य आयु अन्तर्मुहर्तका और उत्कृष्ट आयु तीन पल्यका है। इन चारों गतियोंका जघन्यसे लेकर उत्कृष्ट तक आयु क्रमपूर्वक धारण करनेमें आयुके जितने भेद हो सकते हैं, उन सबको यथाक्रम पूर्ण करनेमें जितना समय लगता है, उसे एक भवपरावर्तनका काल समझना चाहिये। इस भवपरावर्तनके कालसे अनन्तवाँ भाग काल कालपरावर्तनका है। बीस कोड़ाकोड़ीसागरका एक कल्पकाल होता है। इसकालके जितने समय हैं, उन सब समयोंमें क्रमसे जन्म मरण धारण करनेको एक कालपरावर्तन कहते हैं। इस कालपरावर्तनके कालसे अनन्तवां भाग काल क्षेत्रपरावर्तनका होता है। क्षेत्र परावर्तन दो प्रकारका है, एक स्वक्षेत्रपरावर्तन और दूसरा परक्षेत्रपरावर्तन। सूक्ष्मनिगोद लब्ध्यपर्याप्तकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके असंख्यातवें भाग है और महामच्छकी उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन लम्बी,

---

१ यहांपर यह विशेषता है कि नरक गतिमें तो ३३ सागरकी उत्कृष्ट आयुष्य ली जाती है; परंतु देवगतिकी उत्कृष्ट न लेकर केवल ३१ सागरतककी लेनी चाहिये। क्योंकि नवग्रैवेयकसे उपर जो ३१ सागरसे अधिक आयुष्यवाले देव होते हैं, वे सब सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और इसी कारण दो सागरके जितने समय होते हैं उतने बार उन्हें फिर संसारमें जन्म धारण करनेका प्रसंग प्राप्त नहीं होता।

पांचसौ योजन चौड़ी और अढाईसौ योजन ऊंची है। सो उक्त जघन्य अवगाहनासे लेकर उत्कृष्ट अवगाहना तक, क्रमसे एक एक प्रदेश अधिक अवगाहनाके शरीरको लेकर जन्म मरण करनेको एक स्वक्षेत्रपरावर्तन कहते हैं। सुमेरु पर्वतकी जड़के नीचे मध्यके आठ प्रदेश हैं। उनसे एक एक प्रदेश हटकर क्रमपूर्वक तीन लोकके असंख्यात प्रदेशोंमें जन्म मरण करनेका नाम एक परक्षेत्रपरावर्तन है। स्वक्षेत्र और परक्षेत्रपरावर्तनके कालके जोड़को एक क्षेत्रपरावर्तनका काल समझना चाहिये। इस क्षेत्र-परावर्तनके कालका अनन्तवाँ भाग काल पुद्गलपराव-र्तनका है। अनन्त कर्म और नोकर्म पुद्गलपरमाणुओं-को क्रमपूर्वक एकके वाद एक ग्रहण करके छोड़नेको एक पुद्गलपरावर्तन कहते हैं। इसका दूसरा नाम द्रव्यपरा-वर्तन भी है।

पुद्गलपरावर्तनके आधे कालको अर्धपुद्गलपरावर्तन कहते हैं। यह जीव संसारमें मिथ्यात्व परिणामसे अनन्त-वार अनन्त परावर्तन करता है। जब इसका अर्धपुद्गलपरा-वर्तनकाल बाकी रह जाता है, तब ज्ञानी जानता है कि इसकी काललब्धि आ गई है—इसकी योग्यता सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेकी हो गई है। यदि अर्धपुद्गलपरावर्तनसे एक समय भी अधिक भ्रमण शेष रहा हो, तो सम्य-क्त्वकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है। ऐसा नियम है। जिस जीवको सम्यक्त्व हो जाता है, वह अन्तर्मुहूर्तसे लेकर अर्धपुद्गलपरावर्तनके कालके भीतर किसी भी समयमें अवश्य मुक्त हो जाता है।

इस तरह सम्यक्त्वका पाना बहुत कठिन है। इसको पा लेना कुछ लड़कोंका खेल थोड़े ही है।

पुनः पंचपरावर्तन।

भावपरावर्तन अनंत जो करैं हैं जीव,
एक भावतैं अनंत भवके परावर्त हैं।
एक भौसेती अनंत कालपरावर्त करैं,
कालतैं अनंत खेतपरावर्त कर्त हैं॥
एक खेततैं अनंत पुग्गलपरावर्तन,
पंच फेरीविषै आप मिथ्यावस पर्त्त हैं।
सातकौं विनास जिन्हैं सम्यक प्रकास तेई,
दर्व खेत काल भव भावतैं निकर्त हैं॥७७॥

अर्थ—जीव संसारमें मिथ्यात्वके वशीभूत होकर अनन्त भावपरावर्तन करते हैं और जितने समयमें एक भावपरावर्तन होता है, उतनेमें अनन्त भवपरावर्तन हो जाते हैं। क्योंकि, भाव परावर्तनमें सब प्रकारके कर्म-बंधका कारण आत्मभाव क्रमसे उत्पन्न होकर कर्म बाँधता है; किंतु दूसरे परावर्तनोंमें एक एक कर्मके भोगकी ही मुख्यता रहती है अथवा पुद्गलपरावर्तनमें प्रदेशबंध मात्रकी ही मुख्यता रहती है। क्योंकि एक समयमें मिथ्यात्व भावसे जितने कर्म बँधते हैं, उनके क्षय कर-नेके लिये अनन्त भवपरावर्तन करना पड़ते हैं और एक भवमें जो कर्म बँधते हैं, उनके दूर करनेको अनन्त

कालपरावर्तन करना पड़ते हैं। अनन्त संख्याके अनन्त भेद हैं। जितने समयमें एक कालपरावर्तन पूरा होता है, उतनेमें अनन्त क्षेत्रपरावर्तन हो जाते हैं। एक क्षेत्रके बाँधे हुए कर्म दूर करनेको अनन्त पुद्गलपरावर्तन करना पड़ते हैं। इस तरह जीव आप पंच परावर्तनरूप फेरामें अर्थात् चक्करमें पड़ा है—अनन्त वार जन्मता है और अनन्त वार मरता है। जिनके अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिमिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंका विनाश हो गया है; अतएव क्षायिक सम्यक्त्वका प्रकाश हो गया है, वे ही जीव इस द्रव्यक्षेत्रकालभवभावरूप पंच परावर्तनोंके चक्करसे निकल पाते हैं।

पांच लब्धियां।

थावरतैं सैनी होय ए ही खय उपसम है,
दान पूजा उद्यत विसोही उपयोग है।
गुरु उपदेस तत्त्वग्यान सो ही देसना है,
अंत कोराकोरी कर्मकी थिति प्रायोंग है॥
जगमैं अनंत वार चारि लब्धि पाई इनि,
कर्नलब्धि विना समकितकौ न जोग है।
अधो अपूरव अनिवृत्त कर्न तीन करैं,
मिथ्यामाहिं पीछैं चौथा सम्यक नियोग है ७८

अर्थ—अनादि मिथ्यादृष्टी या सादि मिथ्यादृष्टि जीवको बहुत कालसे एकेन्द्रीमें भ्रमण करते करते, समय पाकर स्थावरसे निकलकर सेनी पंचेन्द्रियत्वकी प्राप्ति होनेको क्षयोपशम लब्धि कहते हैं। लब्धिशब्दका अर्थ प्राप्ति है। शुभ कर्मके उदयसे दान पूजादि शुभ कार्योंके करनेके लिये उद्यत होनेको विसोही या विशुद्धि लब्धि कहते हैं। सद्गुरुके उपदेशसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनेको देशनालब्धि कहते हैं।

काल पाकर व्रत धारण करके और उपवासादि तपश्चर्या करके अथवा और भी किसी प्रकार आयुकर्मके सिवा शेष सातों कर्मोंकी स्थितिको अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कर देना सो प्रायोग्य लब्धि है।

ये चारों लब्धियां इस जीवको यद्यपि अनन्त वार हुई हों; परन्तु पांचवीं करणलब्धि जबतक नहीं हुई हो, तबतक इस जीवको सम्यक्त्वका लाभ नहीं होता। क्योंकि करणलब्धिके विना सम्यक्त्वकी प्राप्ति नहीं होती है, ऐसा नियम है।

करण नाम परिणामों का है। जब मिथ्याती जीव सम्यक्त्वके सम्मुख होता है, उस समय उसके परिणाम अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरणरूप होते हैं। जिस करणमें उपरितनसमयवर्ती तथा अधस्तनसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदृश तथा विसदृश हों, उसे अधःकरण कहते हैं। जिसमें उत्तरोत्तर अपूर्व ही अपूर्व

परिणाम होते जावें अर्थात् भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम सदा विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश और विसदृश भी हों, उसको अपूर्वकरण कहते हैं। और जिसमें भिन्नसमयवर्ती जीवोंके परिणाम विसदृश ही हों और एक समयवर्ती जीवोंके सदृश ही हों, उसे अनिवृत्तिकरण करते हैं। ये तीनों प्रकारके परिणाम उत्तरोत्तर अधिक अधिक विशुद्ध होते जाते हैं, इसीसे इनमें परस्पर भेद माना गया है। इन तीन करणोंके कर चुकनेपर सम्यक्त्व होता है।

नन्दीश्वर द्वीप।

एकसौ तिरेसठ किरोर चवरासी लाख,
जोजनका चौरा दीप बावन पहार हैं।
दिसा चारि अंजन जोजन चौरासी हजार,
सोलै दधिमुख जोजन दस हजार हैं॥
रतिकर हैं बत्तीस जोजन हजार एक,
लंबे चौरे ऊंचे सब ढोलके अकार हैं।
सबपर जिनभौन बावन विराजत हैं,
वर्ष तीन बार देव करैं जै जैकार हैं॥ ७९ ॥

अर्थ—इस पद्यमें आठवें नन्दीश्वर द्वीपकी रचनाका वर्णन है। इस द्वीपकी चौड़ाई १६३८४००००० योजन है। इसके भीतर ५२ पर्वत हैं। चारों दिशाओंमें चार तो

अंजनगिरि नामके पर्वत हैं, जो चौरासी चौरासी हजार ऊंचे लम्बे और चौड़े हैं तथा आदि मध्य और अन्तमें इकसां हैं। इन अंजनगिरियोंके चारों ओर एक एक लाख योजन लम्बी, चौड़ी, गहरी चार चार वावड़ी हैं और उनके भीतर दश दश हजार लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाईके दधिमुख नामके सोलह सफेद पर्वत हैं। इस तरह चारों अंजनगिरिके १६ दधिमुख हैं। जिन वावड़ियोंमें दधिमुख पर्वत हैं, उनके बाहरी दो दो कोनोंमें दो दो रतिकर पर्वत हजार हजार योजनके लम्बे, चौड़े, ऊंचे हैं। सारे रतिकर ३२ हैं। इस तरह ४+१६+३२ मिलाकर ५२ पर्वत हुए। ये सब ढोलके समान गोल हैं और इन सबके ऊपर एक एक जिन-मंदिर है। ऐसे सब मिलानेसे ५२ जिनमंदिर होते हैं। वहां वर्षमें तीन वार कातिक, फागुन और असाढ़के अन्तिम आठ दिनोंमें देव आते हैं और पूजा, स्तुति, नृत्य गानादि-करके जयजयकार करते हैं।

मेरुका वर्णन।

मेर एक लाख जड़ ऊंचा निन्यानू हजार,
चूलिका चालीस वाल अंतर विमान हैं।
नीचैं भद्रसाल वन दिसा चारि जिनभौन,
पांचसैपे नंदन चैताले चारि वान हैं॥
साढ़े वासठ हजार सोमनस वन चारि,
चैताले ऊंचे सहस छत्तिस वखान हैं।

तहां वन पाडक चैताले चारि सब सोलै,
मनवचकायसेती बंदौं पाप हान हैं ॥ ८० ॥

अर्थ—सुमेरु पर्वतकी ऊंचाई एक लाख योजनकी है, जिसमेंसे जड़से अर्थात् भूमिके ऊपरी भागपरसे ऊपर (भद्रशालवनसे पांडुकवनतक) ९९ हजार योजन ऊंचा है। रहे एक हजार योजन, सो इतनी उसकी जड़ है। यह जड़ चित्रा पृथिवीसे नीचे है। पांडुक वनसे ऊपर चालीस योजन ऊंची चूलिका है, जिसके ऊपरके भागका सौधर्म स्वर्गके ऋजु विमानसे केवल एक वालके बरावर अन्तर है। नीचे अर्थात् मेरुकी चौगिर्द भूमिपर या चित्रा पृथ्वीके ऊपर भद्रशाल नामका वन है, जिसपर मेरुकी चारों दिशाओंमें चार जिनमंदिर हैं। इस भद्रशालसे पांचसौ योजनकी ऊंचाईपर मेरुकी चारों दिशाओंमें ४ नन्दन वन हैं और उनमें ४ अकृत्रिम चैत्यालय हैं। नन्दनवनोंसे ६२½ हजार योजन की ऊंचाईपर ४ सौमनस नामके वन हैं और उनमें भी ४ चैत्यालय हैं। इससे आगे ३६ हजार योजनकी ऊंचाईपर ४ पांडुक नामके वन हैं और उनमें भी ४ जिनचैत्यालय हैं। इसतरह उक्त चार नामके सोलह वनोंमें जो १६ चैत्यालय हैं, वे पापके नाश करनेवाले हैं। उनकी मैं मनवचनकायपूर्वक बन्दना करता हूं।

मेरुपर्वतका पूर्वपश्चिमविस्तार।

मेरु गोल जड़तलैं दस हजार नव्वैकौ,
भूममैं हजार दस नंदनपै लहा है।

नौ हजार नौसै चौवन भाग कहे तहां,
सौमनस व्यालीससै वहत्तर रहा है ॥
पांडुक हजार एक वीच वारै चूलिका है,
चौसै चौरानूं वन पांडुक सरदहा है।
सौमनस नंदन है पांचसैके भद्रसाल,
बाईस हजार पुव्व पच्छिममैं कहा है ॥८१॥

अर्थ—मेरु पर्वतका विस्तार गोल है। चित्रा पृथ्वीके नीचे मेरुकी जड़ दश हजार और नव्वे (१००९०) योजनकी चाड़ी है। और ऊपर जहां भद्रशालवन है वहां उसकी चौड़ाई दश हजार योजनकी है। इस तरह जड़के नीचेसे चित्रा पृथ्वीतक मेरुकी चौड़ाई क्रमसे कम होती होती ९० योजन कम हो गई है। भद्रशालवनसे ५०० योजनकी ऊंचाईपर नन्दन वन है, वहां मेरु*९९५४ योजन और कुछ भाग ($\frac{6}{11}$) अधिक चौड़ा है अर्थात् वहां उसकी चौड़ाई कुछ कम ४६ योजन घटी है। नन्दन वनसे ६२५०० योजनकी ऊंचाईपर सौमनस वन है। इस ऊंचाईमेंसे प्रारंभकी दश हजार योजनकी ऊंचाई तक तो मेरुकी चौड़ाई एकसी है—घटी नहीं है; परन्तु आगे ५२५०० योजनमें वह क्रमसे घटी है और सौमनस

---

* इसमें दोनों नन्दनवनोंकी पांच पांच सौ योजनकी चौड़ाई भी शामिल है। मेरुकी चौड़ाई यहांपर ८९५४ योजन है।

वनपर †४२७२ योजनकी मोटाई रह गई है। अर्थात् उतनी ऊंचाईमें ५९८२ योजनसे कुछ अधिक घट गई है। इसके ऊपर ३६ हजार योजनकी ऊंचाईपर पांडुकवन हैं। इस ३६ हजारमेंसे ११ हजार योजनकी ऊंचाई तक मेरु पर्वतकी चौड़ाई एकसी है अर्थात् वहांतक ३२७२ योजनकी ही मोटाई चली गई है। आगे वह घटी है और घटते घटते पांडुक वनके पास १ हजार योजनकी रह गई है। जिसके वीचमें चूलिकाकी चौडाई १२ योजन है और शेषमें दोनों ओर चारसौ चौरानवे चौरानवे योजनके पांडुक वन हैं। (४९४+४९४+१२=१०००)

सौमनस और नन्दनवन पांच पांच सौ योजनके चौड़े हैं और भद्रशाल वन पूर्व पश्चिम बाईस बाईस हजार योजनके हैं।

चौदह गुणस्थानोंमें मरकर जीव कहां कहां जाता है।

छप्पय।

मिस्र खीन संजोग, तीनमैं मरन न पावै।
सात आठ नव दसम, ग्यार मरि चौथे आवै॥
प्रथम चहूगति जाय, दुतिय विन नरक तीन गति।
चौथे पूरव आव, बंधतैं चहुगति प्रापति॥

---

† इसमें भी दोनों सौमनसवनोंकी चौड़ाई हजार योजन शामिल है।

पंचमतैं ग्यारम सात गुन, मरै सुरगमैं औतरै।
वंदौं इक चौदस थान तजि, अजर अमर सिवपद वरै ॥ ८२ ॥

अर्थ—तीसरे मिश्रगुणस्थानमें, बारहवें क्षीण कषायमें और तेरहवें सयोगकेवली गुणस्थानमें जीव मरण नहीं पाता है, यह नियम है। सातवें, आठवें, नवनें, दशवें और ग्यारहवें गुणस्थानमें यदि जीव मरण करता है, तो उस समय मरणसे पहले ही ऊपरसे गिरकर एक बार तो चौथे गुणस्थानमें आता है। अर्थात् अन्त समय अव्रतरूप कार्माण शरीर धारण करता है और फिर देवगतिको प्राप्त होता है।

पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें मरा हुआ जीव चारों गतियोंमें जाता है; परन्तु देवगतिमें नवग्रैवेयिक तक ही जाता है। दूसरे गुणस्थानमें मरकर नरकको छोड़कर शेष तीन गतियोंमें अर्थात् तिर्यंच मनुष्य और देवगतिमें जाता है। चौथे गुणस्थानमें मरण करके जीव, पूर्वमें

---

१ इसमें इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पहले यदि नरकायुका बन्ध हो चुका है और फिर यदि सम्यक्त्व उत्पन्न हो तथा सम्यक्त्वसहित ही मरण हो, तो पहले नरकतक ही जाता है—आगेके नरकोंमें नही जाता है और क्षायिक सम्यक्ती पहले नरकमें ही जाता है। इसके सिवाय यदि पहले तिर्यंचगतिका बंध किया हो, और पीछे सम्यक्त्व ग्रहण करके मरे; तो भोगभूमिका तिर्यंच होवे। तथा मिथ्यात्व गुणस्थानमें देवगतिका बन्ध किया हो, पीछे सम्यक्त्व ग्रहण कर मरे, तो स्वर्गोंमें ही उपजे—पातालवासी, ज्योतिषी, और व्यन्तरोंमें उत्पन्न न होवे। यदि सम्यक्त्व ग्रहण करनेके पहले किसी आयुका बंध न किया हो, तो वह मरकर बड़ा देव हो—अन्यगतिमें न जाय और सोभी बड़ी ऋद्धिका धारक हो।

अर्थात् मिथ्यात्व अवस्थामें चारों आयुओंमेंसे जिस आयुका बंध किया हो, उसीको प्राप्त होता है। पांचवेंसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थानतक सात गुणस्थानोंमें यदि जीव मरता है, तो नियमसे स्वर्ग जाता है।

जो चौदहवें गुणस्थानको छोड़कर एक समयमें जरा मरणसे रहित मोक्षपदको प्राप्त करते हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूं।

नवमें गुणस्थानमें ३६ प्रकृतियोंका क्षय।

सवैया इकतीसा।

प्रत्याखानी चारि औ अप्रत्याखानी चारि भेद,
संजुलन तीनि नव नोकषाय जानिए।
एकेंद्री विकलत्रै थावर आतप उदोत,
सूच्छम औ साधारन जीवनिकौं मानिए॥
निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला अरु थानगृद्धि,
नींद तीनौं महाखोटी कबहूं न ठानिए।
नर्क पसु गति आनुपूरवी प्रकृति चारि,
नौमैं गुणथानकमैं ए छतीस मानिए॥ ८३॥

अर्थ—प्रत्याख्यानी चार अर्थात् १ क्रोध, २ मान, ३ माया, ४ लोभ; अप्रत्याख्यानी चार अर्थात् ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध, ६ मान, ७ माया, ८ लोभ; संज्वलन तीन अर्थात् ९ संज्वलन क्रोध, १० माया, ११ मान; नौ नोकषाय अर्थात् १२ हास्य, १३ रति, १४ अरति,

१५ शोक, १६ भय, १७ जुगुप्सा, १८ स्त्रीवेद, १९ पुरुषवेद, २० नपुंसकवेद; २१ एकेन्द्रिय; विकलत्रय अर्थात् २२ दोइंद्रिय, २३ तेइंद्रिय, २४ चौइंद्री; २५ स्थावर, २६ आतप, २७ उद्योत, २८ सूक्ष्म, २९ साधारण; तीनों निद्रा अर्थात् ३० निद्रानिद्रा, ३१ प्रचलाप्रचला, ३२ स्त्यानगृद्धि; ३३ नरकगति, ३४ पशुगति, ३५ नरकगत्यानुपूर्वी और ३६ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी इन ३६ प्रकृतियोंका नववें गुणस्थानमें क्षपकश्रेणीवाला मुनि सत्तासे नाश करता है।

जिनवाणीकी संख्या।

सोलह सै चौंतीस किरोर लाख तेरासिय,
अठत्तरसै अठासी अच्छर ए लेखिए।
इक्यावन कोर आठ लाख सहस चौरासी,
छसै साढ़े इक्कईस ए सिलोक पेखिए॥
ताकौ पद इक जोर इकसौ बारै किरोर,
तेरासी लाख सहस अट्ठावन देखिए।
पंच पद एते सब द्वादसांग जिनवानी,
वंदै मन लाय भेदग्यानकौं विसेखिए॥८४॥

अर्थ—इस पद्यमें द्वादशांगरूप जिनवाणीके अक्षरों, श्लोकों और पदोंकी गिनती बतलाई है। केवली भगवानके द्वारा जो वाणी खिरी थी और गणधरदेवने जिसे

धारण करके गूंथी थी, उसीको जिनवाणी कहते हैं। उसमें १६३४८३०७८८८ अक्षर हैं। ५१०८८४६२१½ श्लोक हैं और उसके पद[1] एकत्र किये जावें, तो वे ११२८३५८००५ होते हैं। इन सब पदोंकी समूहरूप जिनवाणीकी जी लगाकर वन्दना करनेसे भेदज्ञानकी वृद्धि होती है।

चौदह गुणस्थानोंमें कर्मोंका आस्रव।

पहलैं पांचौं मिथ्यात दूजैं अनंतानुवंधी,
ग्यारै अविरत प्रत्याख्यानी पाँचैं गहे।
वैक्रियक औ अप्रत्याख्यानी त्रसवध चौथैं,
आहारक छैंहैं षट हास्य आठलौं लहे॥
तीनि वेद तीनि संजुलन नवैं लोभ दसैं,
असत उभै वचन मन बारहैं कहे।
सत अनुभय वच मन औदारिक तेरैं,
मिस्र कारमान चारगुनथानैं सरदहे॥ ८५॥

अर्थ—पहिले गुणस्थानमें एकान्त, विनय, विपरीत, संशय और अज्ञान इन पांच मिथ्यात्वोंसे आस्रव होता है—आगे इनका आस्रव नहीं होता। दूसरे गुणस्थानमें अनन्तानुवन्धी क्रोध मान माया और लोभसे आस्रव होता

---

१ उक्तं च—कोटी शतं द्वादश चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पञ्चपदं नमामि॥

है। पाचवें गुणस्थानमें ग्यारह अविरतोंसे (पांच इंद्रिय छट्ठे मनकी स्वच्छन्दता और पांच थावरोंकी विराधनासे) और प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ इन चारसे; इस तरह पन्द्रहोंसे आस्रव होता है। चौथे गुणस्थानमें वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ, और त्रसवध इन सातोंसे; छट्ठे गुणस्थानमें आहारक और आहारक मिश्र इन दोसे; आठवेंमें हास्यादि छहसे अर्थात् हास्य, रति, अरति, शोक, भय, और जुगुप्सासे; नववेंमें स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ये तीन वेद और संज्वलन क्रोध मान माया ये तीन संज्वलन कषाय इस तरह छहसे; दशवेंमें सूक्ष्मलोभसे, बारहवेंमें असत् वचन, उभय वचन, असत् मन, उभय मन इन चार योगोंसे और तेरहवेंमें सत् वचन, अनुभय वचन, सत् मन, अनुभय मन ये चार मनवचनयोग और औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्माण इन सातोंसे आस्रव होता है।

मिश्र योग और कार्माण योगकी व्युच्छित्ति चार गुणस्थानोंमें अर्थात् पहले, दूसरे, चौथे और तेरहवें गुणस्थानोंमें होती है।

चौदह गुणस्थानोंमें चारों आयुओंका बंध और उदय।

नरक आव पहलैं बँधै उदय चौथे लौं,
पसू आव दूजैं बंध उदै पांचमैं कही।
नर आव चौथे लग बंध उदै चौदहलौं,
सुर आव सातैं बंध उदै चारिमैं लही॥

नर पसुजीव नर्क पसु नर आव बंध,
चौथेतैं आगैं चढ़िवेकौं न सकति गही।
चारौं आव तीजे गुनथानकमैं बंध नाहिं,
आव नास भए सिद्ध तिनकौं बंदौं सही ॥८४॥

अर्थ—नरक आयुका बंध पहले मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है और उदय चौथे गुणस्थानतक होता है। पशु-आयु या तिर्यंचायुका बंध दूसरे गुणस्थान तक अर्थात् पहिले और दूसरे गुणस्थानमें होता है और उदय पांचवें गुणस्थान तक होता है। मनुष्यायुका बंध चौथे गुण-स्थानतक होता है और उदय चौदहवें तक रहता है। देवायुका बंध सातवें गुणस्थानतक होता है और उदय चौथे तक रहता है[1]। किसी मनुष्य या पशु जीवने नरक पशु या मनुष्यकी आयु बांध ली हो, तो वह चौथे गुणस्थानसे आगे नहीं बढ़ सकता है—उसके परिणामोंकी इतनी बढ़नेकी शक्ति नहीं हो सकती है। उपर्युक्त चारों आयुओंका बंध तीसरे मिश्र गुणस्थानमें नहीं हो सकता है, ऐसा नियम है। जो महात्मा इन चारों आयुओंका नाश करके सिद्ध पदको प्राप्त हो गये हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूं।

आठ स्थानोंमें निगोद नहीं, चार स्थानोंमें सासादन जीव नहीं जाते, आदि कथन।

भूमि नीर आगि पौन केवली औ आहारक,

---

१ जिस मुनिने देवगतिका बंध कर लिया हो, वह आगे ग्यारहवें गुणस्थान तक चढ़ सकता है; परन्तु देवगतिका बंध सातवें गुणस्थानतक ही होता है।

नर्क सुर्ग आठमैं निगोद नाहिं गाइए।
सूच्छम नरक तेज वायमैं न सासादन,
भौनत्रिक पसुमैं न तीर्थंकर पाइए॥
सब ही सूच्छम अंग कहे हैं कपोत रंग,
कारमान देहको सुपेद रूप भाइए।
विपुल मनपर्जै औ पर्म औधि सर्व औधि,
ठीक लहैं मोख तातैं इन्हैं सीस नाइए॥८७॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, पवनकाय, केवली भगवानका परमौदारिक शरीर, छट्ठे गुणस्थान-वर्ती मुनिके प्रगट हुआ आहारक शरीर, नारकी जीवोंके शरीर और देवोंके शरीर इन आठ स्थानोंमें, निगोद जीव नहीं होते हैं। सूक्ष्म जीवोंमें अर्थात् पृथ्वीकाय, जलकाय, नित्यनिगोद और इतर निगोदके जीवोंमें, सातों नरकोंके जीवोंमें, अग्निकायके सूक्ष्म वादर जीवोंमें और पवन-कायके सूक्ष्म वादर जीवोंमें—इस तरह इन चार स्थानोंके जीवोंमें सासादन गुणस्थान नहीं होता है। अर्थात् जीव सासादन गुणस्थानके परिणामोंके साथ मरकर सासादन परिणामोंको वहांतक नहीं ले जासकता है। भवन-त्रिक अर्थात् पातालवासी देव, व्यन्तर देव और ज्योतिषी देव, तथा भोगभूमिया और कर्मभूमिया पशु इनमें तीर्थंकरकी सत्ता सहित जीव नहीं जाता है। अर्थात् तीर्थंकर नामकर्मका बंध जिसको हुआ हो, वह जीव

पातालवासीदेव आदिमें जन्म नहीं लेता है। सूक्ष्म जीव जो कि छह प्रकारके हैं, उनका रंग कापोत अर्थात् कबूतर सरीखा होता है। विग्रहगतिमें जो कार्माण शरीर होता है, उसका रंग सफेद समझना चाहिये। विपुलमनःपर्यय ज्ञान, परमावधि ज्ञान और सर्वावधि ज्ञानके धारक मुनि निश्चयपूर्वक मोक्षको पाते हैं—वे तद्भवमोक्षगामी होते हैं, इसलिये मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।

सात नरकों और सोलह स्वर्गोंका आवागमन।

साततैं निकसि पसु छट्ठे नर व्रत नाहिं,
पांचैं महाव्रत चौथेसेती मोख सार है।
तीजे दूजे पहलेतैं आय जिनराय होय,
भौनत्रिक सुरग दोय एकेंद्री धार है॥
बारहवें स्वर्गसेती पंचइंद्री पसु होय,
ऊपरकौं आयौ एक नरकौ औतार है।
दक्खेंद्र सुधर्मरानी लोकपाल लौकांतिक,
सर्वारथसिद्धि मोख लहै, नमोकार है॥ ८८॥

अर्थ—सातवें नरकसे निकलकर जीव क्रूर पंचेन्द्रिय पशु होता है-मनुष्य नहीं होता है। छट्ठे नरकसे निकलकर जीव मनुष्य तो हो जाता है; परन्तु महाव्रत धारण नहीं कर सकता है। पांचवेंसे निकलकर मनुष्य होता है और महाव्रत भी धारण कर सकता है; परन्तु समस्त कर्मोंका क्षयकर मुक्त नहीं हो सकता है। चौथे नरकसे निकलकर

मनुष्य होकर, महाव्रत धारण करके मोक्षको भी प्राप्त कर सकता है; पर तीर्थंकर नहीं हो सकता। तीसरे, दूसरे और पहले नरकसे निकलकर अचिन्त्य विभूतिका धारक तीर्थंकर भी हो सकता है[1]। भवनत्रिक देव (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी) और सौधर्म, ईशान स्वर्गोंके देव मरकर एकेंद्री पर्यायमें भी जन्म ले सकते हैं; परन्तु एकेंद्रीमें अग्निकाय, वायुकायके जीव नहीं हो सकते हैं—बादर पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय हो सकते हैं। तीसरे सनत्कुमार स्वर्गसे बारहवें सहस्रार स्वर्गतकके देव पंचेंद्री पशु हो सकते हैं—एकेंद्रियादि नहीं हो सकते और बारहवें स्वर्गसे ऊपरके देव एक मनुष्यशरीरमें ही अवतार लेते हैं—अन्य गतियोंमें नहीं जाते। स्वर्गोंके आठ युगल हैं और उनमें बारह इंद्र हैं। इन बारह इंद्रोंमें छह उत्तरके हैं और छह दक्षिणके हैं। दक्षिणके छह इंद्र, सुधर्म स्वर्गकी इंद्राणी, सौधर्म स्वर्गके चारों लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि स्वर्गके सब अहमिन्द्र ये मोक्षको प्राप्त होते हैं—केवल एक ही भव धारण करके मुक्त हो जाते हैं, इसलिये उन सबको मेरा नमस्कार है।

कषायोंके दृष्टान्त और उनके फल।

पाहनकी रेख, थंभ पाथरकौ, बाँसबिड़ा,

[1] नरकका निकला हुआ जीव सीधा स्वर्गमें जन्म नहीं ले सकता और स्वर्गसे च्युत हुआ सीधा नरकमें नहीं जासकता है, ऐसा नियम है। स्त्री मरण करके छठे नरकतक जा सकती है, सातवें नरकमें नहीं जा सकती।

कृमिरंग सम, चारौं नर्कमाहिं ले धरैं।
हललीक हाड़थंभ मेपसींग गाड़ीमल,
क्रोध मान माया लोभ तिरजंचमैं परैं॥
रथलीक काठथंभ गोमूत देहमैलसे,
कषाय भरे जीव मानुषमें अवतरैं।
जलरेखा वेतदंड खुरपा हलदरंग,
द्यानत ए चारि भाव सुर्गरिद्धिकौं करैं॥८९॥

अर्थ—क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायोंके परिणामोंकी तीव्रता मन्दताके अनुसार १६ भेद होते हैं। उन सबके क्रमसे दृष्टान्त तथा फल कहते हैं:—अनन्तानुबन्धी क्रोध पत्थरकी लकीरके समान अनन्त काल तक ठहरता है-बहुत ही कठिनाईसे नष्ट होता है। अनन्तानुबन्धी मान पाषाणके खंभके समान अनन्त काल तक सीधा ज्योंका त्यों बना रहता है-सहज ही नहीं नवता है। अनन्तानुबन्धी माया बांसके भिड़के समान बहुत ही टेढ़ी मेढ़ी रहती है-और अनन्तानुबंधी लोभ कृमिरंग अर्थात् लाखके रंगके समान बहुत ही पक्का होता है-अनन्तकालतक बना रहता है-शीघ्र नहीं धुलता। ये चारों कषाय सम्यक्त्वको नहीं होने देते हैं और जीवको नरक गतिमें ले जाते हैं। अप्रत्याख्यानी क्रोध खेत जोतनेसे जैसी हलकी लकीर बन जाती है, उसके

समान छह महीना तक रहता है। अप्रत्याख्यानी मान हड्डीके खंभके समान है-नव सकता है; परन्तु मुश्किलसे। अप्रत्याख्यानी माया जिसतरह मेंढ़ेके सींग साधारण टेढ़े और लड़नेमें घिसघिसकर कम होते हैं उसी तरह टेढी और धीरे धीरे कम होती है। अप्रत्याख्यानी लोभ गाड़ीके औंगनके रंग समान है-कठिनाईसे छूट सकता है। ये चार कषाय सम्यक्त्वका घात तो नहीं करते हैं; परन्तु व्रत अणुमात्र भी ग्रहण नहीं करने देते हैं और जीवको तिर्यंच गतिमें ले जाते हैं। प्रत्याख्यानी क्रोध गाड़ीके चक्केकी लकीरके समान होता है-अधिक समय तक नहीं ठहरता है। प्रत्याख्यानी मान लकड़ीके खंभके समान होता है-प्रयत्न करनेसे नव सकता है। प्रत्याख्यानी माया गोमूत्रके समान कम टिढ़ाई लिये होती है। प्रत्याख्यानी लोभ शरीरके ऊपर जो मैल लग जाता है, उसके समान होता है-शीघ्र छूट जाता है। ये चारों कषाय महाव्रत धारण नहीं करने देते हैं और इन कषायोंसे भरे हुए जीव प्रायः मनुष्य गतिमें जन्म पाते हैं। ये प्रत्याख्यानी कषाय एक वारके उत्पन्न हुए अधिकसे अधिक १५ दिनतक रहते हैं। संज्वलन क्रोध पानीकी लकीरके समान है-तत्काल ही नष्ट हो जाता है। संज्वलन मान वेतकी छड़ीके समान है, जो थोड़ेसे प्रयत्नसे ही लच जाती है। संज्वलन माया खुरपाके समान है-उसमें थोड़ीसी ही टिढ़ाई रहती है और संज्वलन लोभ हलदीके रंग समान है-बहुत सुगमतासे मिट जाता है। ग्रन्थकर्त्ता द्यानतराय कहते हैं कि

ये चार कषायभाव स्वर्गऋद्धिके करनेवाले हैं; परन्तु इनके होते हुए यथाख्यात चारित्र नहीं हो सकता है।

चौदह गुणस्थानोंमें चौतीस भाव।

पहलैं मिथ्या अभव्व दूसरैं विभंग तीनि,
लेस्या तीनि अव्रत नरक देव चारमैं।
पसु पांचैं लेस्या दोय सातैं लोभ दसैं लग,
क्रोध मान माया तीनि वेद नौ विचारमैं॥
सेत तेरैं नर भव्व जीवत असिद्ध चौदैं,
पंचलब्ध अग्यान चछ अचछ वारमैं।
चौतीसौं भाव कहे चौदह गुनथानकमैं,
वे (?) उनीस बारहमैं मैं हौं अविकारमैं॥९०॥

अर्थ—पहले मिथ्यात्व गुणस्थानतक मिथ्यात्व भाव और अभव्य भाव ये दो भाव, दूसरे गुणस्थान तक कुमति कुश्रुत और कुअवधि ये तीन विभंग भाव (क्षायोपशमिक), चौथे गुणस्थान तक कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्या तथा अव्रत (असंयम) नरकगति और देवगति इस प्रकार छह भाव, पांचवें गुणस्थानतक पशु अर्थात् तिर्यंचगति यह एक, सातवें तक पीतलेश्या और पद्मलेश्या ये दो भाव, नववें तक क्रोध मान माया और पुरुषवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद ये तीन वेद इस तरह छह

भाव, दशवें तक सूक्ष्म लोभ यह एक, वारहवें तक पांच लब्धि यां (दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य), अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये आठ भाव, तेरहवें तक शुक्ल लेश्या यह एक और चौदहवें तक मनुष्यगति, भव्यत्व, जीवत्व और असिद्धत्व ये चार भाव होते हैं। इस तरह ये ३४ भाव क्रमसे चौदह गुणस्थानोंमें वतलाये अर्थात् यह वतलाया कि किन किन गुणस्थानोंमें किन किन भावोंकी व्युच्छित्ति होती है? जिस गुणस्थानमें जिस भावकी व्युच्छित्ति कही हो, उस गुणस्थानसे ऊपर वह भाव नहीं रह सकता। इस लिये यहांपर जिस गुणस्थान तक जो भाव कहा हो वह भाव उससे पूर्वके गुणस्थानोंमें तो यथासंभव मिल सकता है; परंतु उसके ऊपरके गुणस्थानमें वह भाव सर्वथा नहीं रह सकता। इनके सिवा १९ भाव वारह गुणस्थानोंमें वतलाये हैं। (देखो आगेका सवैया) मैं इन सव भावोंसे जुदा विकाररहित हूं। क्योंकि, कर्मरूप परवस्तुके योगसे ये सव विकार उपजते हैं। शुद्ध आत्मामें इन भावोंकी कल्पना नहीं है।

वारह गुणस्थानोंमें उन्नीस भाव।

उपसम चौथैं ग्यारैं वेदक है चौथैं सातैं,
छायक है चौथैं चौदैं, देशव्रत पांचमैं।
ग्यान तीनि तीजैं वारैं, मनपजैं छट्टैं वारैं,
चारित सराग छट्टैं दसैं कह्यौ सांचमैं॥

औधि तीजैं बारैं, उपसम चारित ग्यारैं ही,
छायक चारित बारैं चौदैं कर्म वाचमें।
पंचलब्धि छायक दरस ग्यान तेरैं चौदैं,
नमौं भाव उनईस छूटौं नर्क आंचमें ॥९३॥

अर्थ—उपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थानसे लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है। वेदक सम्यक्त्व चौथेसे सातवें गुणस्थानतक होता है और क्षायिक सम्यक्त्व चौथेसे चौदहवें तक पाया जाता है। देशव्रत भाव पांचवें ही गुणस्थानमें होता है। मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान तीसरे गुणस्थानसे लेकर वारहवें तक, मनःपर्जय ज्ञान छठेसे वारहवें तक और सराग चारित्र छठेसे दशवें तक कहा है। अवधि दर्शन तीसरेसे वारहवें तक होता है। उपशम चारित्र एक ग्यारहवें गुणस्थानमें ही होता है। क्षायिक चारित्र वारहवेंसे लेकर चौदहवें गुणस्थानतक पाया जाता है। पांच लब्धि, क्षायिक दर्शन (केवल दर्शन) और केवल ज्ञान ये ७ भाव तेरहवें चौदहवें गुणस्थानमें होते हैं। इस तरह (पहिले दूसरेको छोड़कर) वारह गुणस्थानोंमें १९ भाव होते हैं। इन भावोंको मैं नमस्कार करता हूं, जिससे मैं नरकोंकी आंचसे छूट जाऊं—बच जाऊं। यदि पहले आयुबंध न हुआ हो, तो इन भावोंके होनेपर फिर नरकादिके दुःख नहीं सहना पड़ते हैं।

ये १९ भाव घाति कर्मोंका क्षयोपशमादि होनेसे ही

होते हैं। इनके कहनेमें व्युच्छित्ति होनेका या दिखानेका वक्ताका अभिप्राय नहीं है।

पहले जो ३४ भाव कहे हैं उनमें कुछकी उत्पत्ति तो कर्मोदयसे, कुछकी क्षयोपशमादिसे तथा कुछकी स्वाभाविक होती है अर्थात् उनमें कर्मकी क्षयोपशमादि किसी अवस्था विशेषकी आवश्यकता नहीं पड़ती और उनका वर्णन ऊपर ऊपरके गुणस्थानोंमें उनकी व्युच्छित्ति दिखानेके लिये किया गया है। दोनों जगह इन भावोंके जुदा जुदा कहनेका यही प्रयोजन है।

चौदह गुणस्थानोंमें त्रेपन भाव।

कवित्त (३१ मात्रा।)

चौतिस वत्तिस तेतिस छत्तिस,
इकतिस इकतिस इकतिस मान।
अट्ठाइस अट्ठाइस वाइस,
वाइस बीस बारमैं थान॥
चौथै तेरै अंतिम थानक,
पंच भाव सिद्धाले जान।
सम्यक ग्यान दरस बल जीवत,
निहचैसौं तू आप पिछान॥ ९२॥

अर्थ—जीवोंके जो ५३ भाव हैं, वे चौदह गुणस्थानोंमें क्रमसे इस प्रकार होते हैं:—पहले गुणस्थानमें ३४, दूसरेमें ३२, तीसरेमें ३३, चौथेमें ३६, पांचवेंमें ३१, छठेमें

२१, सातवेंमें २१, आठवेंमें २८, नववेंमें २८, दशवेंमें २२, ग्यारहवेंमें २२, बारहवेंमें २०, तेरहवेंमें १४ और चौदहवेंमें १३। सिद्धालयमें पांच भाव होते हैं-सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वल और जीवत्व। हे आत्मन्, निश्चयसे तू आपको सिद्धके समान समझ।

अब यहां यह बतलाया जाता है कि त्रेपन भाव कौन कौन हैं:—भावोंके मूलभेद ५ हैं-औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक। औपशमिकके दो भेद हैं-उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र। क्षायिकके नव भेद हैं-क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक चारित्र, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य। क्षायोपशमिक या मिश्रके १८ भेद हैं-मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य (क्षायोपशमिक लब्धि), क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिकचारित्र, और संयमासंयम। औदयिकके २१ भेद हैं:-४ गति, ४ कषाय, ३ लिंग, मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयत, असिद्धत्व और ६ लेश्या। पारिणामिकके तीन भेद हैं-जीवत्व, भव्यत्व, और अभव्यत्व।

चारों गतियोंमें आस्रवद्वार।

सवैया इकतीसा।

वैक्रियक दोय बिना नर पचपन द्वार,
आहारक दोय बिना त्रेपन तिर्जंच है।

औदारिक दोय दोय आहारक पंढवेद,
पांच विना देवनिकै बावनकौ संच है ॥
आहारक दोय दोय औदारिक नारि नर,
छहौं बिना इक्यावन नर्कमैं प्रपंच है ।
चारौं गतिमाहिं ऐसैं आस्रव सरूप जान,
नमौं सिद्ध भगवान जहां नाहिं रंच है ॥९३॥

अर्थ—मनुष्यगतिमें वैक्रियिक और वैक्रियिक मिश्र इन दोको छोड़कर शेष ५५ आस्रवद्वार सामान्यतासे हैं। तिर्यंचगतिमें आहारक और आहारक मिश्र इन दोको (५५ मेंसे) छोड़कर ५३ आस्रवद्वार हैं। देवगतिमें औदरिक, औदारिक मिश्र, आहारक मिश्र, और नपुंसकवेद इन पांचको छोड़कर (५७ मेंसे) ५२ आस्रवद्वार हैं। नरक गतिमें आहारक, आहारकमिश्र, औदारिक, औदारिक मिश्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छहको छोड़कर ५१ आस्रवद्वार हैं। इस तरह चारों गतियोंमें आस्रव द्वारोंका स्वरूप जानना चाहिये। उन सिद्धभगवानको नमस्कार है, जिनके कर्मोंका आस्रव रंच मात्र भी नहीं होता है।

चारों गतियोंमें त्रेपन भाव।

सासतो सुभाव पंचभाव सिद्ध वंदत हौं,
तीनौं गति विना नरकै पचास दीस हैं।
छायकके आठ समकित विना मनपजैं,
चारित दो ग्यारे विन पसु उन्तालीस हैं ॥

सुभलेस्या तीनि नरनारिवेद देसव्रत,
एते छहौं भाव बिना नारक तेतीस हैं।
हीन तीन लेस्या पंढवेद चारि भाव नाहिं,
सुभलेस्या नरनारि सुरकैं चौंतीस हैं ॥ ९४ ॥

अर्थ—क्षायिकदर्शन, क्षायिकज्ञान, क्षायिकसम्यक्त्व, अनन्तबल और जीवत्व ये पांच भाव सिद्ध भगवानके शाश्वत स्वभाव हैं। अर्थात् उनके ये पांच भाव सदा अविनाशी हैं। ऐसे सिद्धोंकी मैं वन्दना करता हूं। नरकगति, तिर्यंचगति, और देवगति इन तीन औदयिक भावोंके विना वाकी ५० भाव मनुष्यगतिमें सामान्यतासे हैं। क्षायिकभाव ९ हैं, उनमेंसे सम्यक्त्वको छोड़कर ८ भाव, मनःपर्ययज्ञान, और दो चारित्र अर्थात् उपशम चारित्र और क्षयोपशमिक चारित्र इस तरह ११ भावोंको छोड़कर (त्रेपनमेंसे नरक, देव और मनुष्य इन तीनके छोड़नेसे वाकी रहे जो ५० भाव उनमेंसे) वाकी ३९ भाव तिर्यंचगतिमें होते हैं। पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन शुभलेश्या, और पुरुषवेद, स्त्रीवेद, देशव्रत इस तरह छह भावोंको छोड़कर ([1]३९ मेंसे) वाकी ३३ भाव नरक गतिमें

---

(१) तिर्यंच गतिमें ३९ भाव दिखाते समय जिस तरह नरकगतिको कम किया है उसी तरह यहांपर नरकगतिके भाव दिखलाते समय तिर्यंच गति घटानी चाहिये। वाकी १३ भाव उपर्युक्त ही कम होते हैं। इस तरह उक्त ३९ मेंसे ६ भाव घटाकर ३३ भाव रक्खे गये हैं।

होते हैं। कृष्ण, नील, कापोत ये तीन हीन लेश्या अर्थात् अशुभलेश्या और नपुंसकवेद ये चार भाव (३३मेंसे) देवगतिमें नहीं होते हैं और पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या (शुभलेश्या), पुरुषवेद, स्त्रीवेद ये पांच विशेष होते हैं। इस तरह ३३-४+५=३४ भाव देवगतिमें सामान्यतासे हैं।

छहों लेश्यावालोंके मिथ्यात्वगुणस्थानमें कौन कौन
कर्मोंका बन्ध होता है ?

विकलत्रै सूच्छम साधारन अपजापत,
नरकगति आनुपूर्वी नरक आव हैं।
मिथ्यामाहिं लेस्या तीनि बांधै इकसौ सतरै,
नव विना पीतकै अठोत्तरसौ भाव हैं॥
एकेंद्री थावर औ आतप इन तीनि विना,
पदम एकसौ पांच बंधकौं उपाव हैं।
पसूगति आव आनुपूरवी उदोत चारि,
विना, सुकल सौ एक बांधैं पुन चाव हैं॥९५॥

अर्थ—मिथ्यात्व गुणस्थानमें कृष्ण नील और कापोत इन तीन लेश्यावाले जीव ११७ प्रकृतियोंका वन्ध करते हैं (देखो ६० वें पद्यकी टीका)। इनमेंसे विकलत्रय (दोइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौइंद्रिय), सूक्ष्म, साधारण, अपर्याप्त, नरक गति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरक आयु इन ९ प्रकृतियोंको छोड़कर वाकी १०८ प्रकृतियोंका वन्ध

पीत लेश्यावाले करते हैं। एकेन्द्रिय, स्थावर और आतप इन तीनको छोड़कर (१०८ मेंसे) १०५ प्रकृतियोंका बंध पीतलेश्यावाले जीव करते हैं और तिर्यंच गति, तिर्यंच आयु, तिर्यंच आनुपूर्वी, और उद्योत इन चारको छोड़कर (१०५ मेंसे) १०१ प्रकृतियोंका बंध शुक्लेश्यावाले जीव करते हैं।

साधारणतः मिथ्यात्वगुणस्थानमें ११७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है; परन्तु लेश्याके सम्बन्धसे यह विशेषता होती है। अर्थात् पीतपद्मशुक्ललेश्यावाले जीवोंके ११७ से कम प्रकृतियोंका वन्ध होता है।

चौरासी लाख योनियां।

सात लाख पृथ्वीकाय सात लाख अपकाय,
सात लाख तेजकाय सात लाख वात है।
सात लाख नित्य औ इतर सात साधारन,
दस लाख परतेक इकइंद्री गात है॥
वे ते चव इंद्री दो दो मानुष चौदह लाख,
नर्क स्वर्ग पसु चारि चारि लाख जात है।
चवरासी लाख जात मो ऊपर छिमा करौ,
हमहूनैं छिमा करी वैर किए घात है॥९६॥

अर्थ—पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, नित्य निगोद और इतर निगोद (साधारण) जीवोंकी

सात सात लाख प्रकारकी जातियां या योनियां हैं। तथा प्रत्येक वनस्पति जीवोंकी दश लाख जातियां हैं। इस तरह एकेन्द्री जीवोंकी ५२ लाख जातियां हैं। दोइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय जीवोंकी दो दो लाख, मनुष्योंकी चौदह लाख, और नारकियों, देवों तथा पशुओंकी चार चार लाख जातियां हैं। इस तरह सब ५२+६+१४+१२=८४ लाख जातिके जीव मुझपर क्षमा करें। मैं भी उनपर क्षमा भाव रखता हूं। क्योंकि क्षमाका विरुद्ध भाव जो वैर है, उसके करनेसे घात होता है-भव भवमें दुःख सहना पड़ते हैं।

वे त्रेसठ कर्मप्रकृतियां कि जिनका नाश होनेपर केवलज्ञान होता है।

नर्क पसू गति आनुपूरवी प्रकृति चारि,
पंचेंद्रिय बिना चारि आतप उदोत हैं।
साधारन सूच्छम औ थावर प्रकृति तेरै,
नर आव विना तीनि मिलि सोलै होत हैं॥
सैंतालीस घातियाकी त्रेसठि प्रकृति सब,
नासि भए तीर्थंकर ग्यानमई जोत हैं।
देवनके देव अरहंत हैं परम पूजि,
तिनहीकी बिंब पूजि होहिं ऊंच गोत हैं ९७

अर्थ—१ नरक गति, २ तिर्यंच गति, ३ नरकगत्यानुपूर्वी, ४ तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियको छोड़कर शेष चार इंद्रियां अर्थात् ५ एकेन्द्री, ६ दोइंद्रिय, ७ तेइंद्रिय, ८ चौइंद्रिय; ९ आतप, १० उद्योत, ११ साधारण, १२ सूक्ष्म और १३ स्थावर

इन तेरहमें नर आयुको छोड़कर शेष तीन आयु मिलानेसे अर्थात् नरक आयु, तिर्यंचायु और देव आयु जोड़नेसे १६ प्रकृतियां अघातिया कर्मोंकी होती हैं। इनमें घातिया कर्मोंकी ४७ प्रकृतियां (५ ज्ञानावरणी, ९ दर्शनावरणी, २८ मोहनी, ५ अन्तराय) मिलानेसे ६३ प्रकृतियां होती हैं। इन सबका नाश करके तीर्थंकर केवलज्ञानमय ज्योतिके धारण करनेवाले हुए हैं। ये ही तीर्थंकर भगवान् देवोंके देव अरहंत और परम पूज्य हैं। इनकी प्रतिमाका पूजन करनेसे उच्च गोत्रका वन्ध होता है। अर्थात् प्रतिष्ठित कुलोंमें जन्म मिलता है।

चारों गतियोंमें कौन कौन और कितनी कितनी प्रकृतियोंका वन्ध होता है?

औदारिक दोय आहारक दोय नर्क देव,
गति आव आनुपूरवी दसौं बखानी हैं।
विकलत्रै सूच्छम साधारन अपजापत,
सोलै बिन सत चार देवकैं प्रवानी हैं॥
एकेंद्री थावर आतप तीन प्रकृति विना,
नर्क एक सत एक बंधजोग जानी हैं।
तीर्थंकर आहारक बिना पसू सौ सतरै,
नरकैं बीसासौ सब नासैं सिवथानी हैं॥९८॥

अर्थ—आठकर्मोंकी १२० प्रकृतियां वन्धयोग्य हैं। इनमेंसे देवगतिमें १ औदारिक, २ औदारिक अंगोपांग,

३ आहारक, ४ आहारक अंगोपांग, ५ नरक गति, ६ देव गति, ७ नरकगत्यानुपूर्वी, ८ देवगत्यानुपूर्वी, ९ नरक आयु, १० देवायु, ये दश और १ दो इंद्री, २ ते इंद्री, ३ चौ इंद्रिय, ४ सूक्ष्म, ५ साधारण, ६ अपर्याप्त ये छह इस तरह १६ प्रकृतियोंको छोड़कर शेष १०४ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। नरकगतिमें एकेंद्री, स्थावर और आताप इन तीनको छोड़कर (१०४ मेंसे) बाकी १०१ प्रकृतियोंका वन्ध होता है। तिर्यंच गतिमें तीर्थंकर और दोनों आहारक (आहारक, आहारक अंगोपांग) इन तीनको छोड़कर (१२० मेंसे) ११७ प्रकृतियोंका वन्ध होता है और मनुष्य गतिमें सामान्यतः एकसौ बीसों प्रकृतियोंका वन्ध होता है। इन सब प्रकृतियोंका नाश करनेसे जीव शिवथानी अर्थात् सिद्ध भगवान् हो जाते हैं।

समस्त जीवोंकी उत्कृष्ट आयु।

मृदु भूमि बारै खर भू बाईस जल सात,
वात तीनि तरू कायकी दस हजार है।
पंखीकी बहत्तरि सहस बियालीस सांप,
आगि दिन तीनि दोइंद्री वरस बार है॥
तेइंद्री दिन उनंचास चवइंद्री छैमास,
सरीसृप पूरवांग नव आव धार है।
मच्छ कोर पूरव मनुष्य पसू तीनि पल्य,
सागर तेतीस देव नारकीकी सार है॥९९॥

अर्थ—मृदुभूमिकायिककी अर्थात् गेरू, हरताल आदि

कोमल पृथ्वीकायिक जीवोंकी उत्कृष्ट आयु १२ हजार वर्षकी है और खरभूकायकी अर्थात् रत्न पत्थर आदि, कठोर पृथ्वीकायिक जीवोंकी २२ हजार वर्षकी है। जलकायिकजीवोंकी ७ हजार, वायुकायिककी ३ हजार, तरुकायिककी १० हजार, पक्षियोंकी ७२ हजार, सर्पोंकी ४२ हजार वर्ष, अग्निकायिककी ३ दिन, शंख आदि दोइंद्रिय जीवोंकी १२ वर्ष, बिच्छू छिपकली आदि तेइंद्रिय जीवोंकी ४९ दिन, भौंरा आदि चोइंद्रिय जीवोंकी ६ महीना, सरीसृप (पेटके बल सरकनेवाले) जीवोंकी ९ पूर्वांग, मच्छकी (कर्मभूमियां मनुष्य और पशुओंकी भी) एक कोटिपूर्व, भोगभूमिया मनुष्यों तथा पशुओंकी तीन पल्य और देवों तथा नारकियोंकी उत्कृष्ट आयु ३३ सागरकी है।

नक्षत्रोंके तारे और अकृत्रिमचैत्यालय।

पट पांच तीनि एक पट तीनि पट चारि,
दो दो पांच एक एक चौ पट तीनों गहे।
नव चौ चौ तीनि तीनि पांच एकसौ ग्यारह,
दोय दो बतीस पांच तीनि तारे ए लहे॥
कृतिकादि ठाइसके सब दोसै इकताली,
एक एकके ग्यारहसौ ग्यारै सरदहे।
दोय लाख सतसठ हजार नवसै बानूं,
सबमैं चिताले प्रतिबिंब बानीमैं कहे॥१००॥

अर्थ—कृत्तिकादि नक्षत्रोंकी संख्या २८ है और उनके

सम्बन्धी तारोंकी संख्या २४१ है। फिर इन प्रत्येक तारोंके सम्बन्धी ग्यारह सौ ग्यारह ग्यारह तारे हैं। इस तरह सब मिलाकर २६७९९२ तारे हैं। इन सब तारोंमें जिनेन्द्रदेवके अकृत्रिम चैत्यालय हैं, ऐसा जिनवाणीमें कहा है। कौन कौन नक्षत्रोंके कितने कितने और कौन कौन तारे हैं, यह नीचे लिखे कोष्टकमें बतलाया है:—

अट्ठाईस नक्षत्रोंके तारे।

१	कृत्तिकाके	६	१५	अनुराधाके	६
२	रोहिणीके	५	१६	ज्येष्ठा	३
३	मृग	३	१७	मूल	९
४	आर्द्रा	१	१८	पूर्वापाढ	४
५	पुनर्वसु	६	१९	उत्तरापाढ	४
६	पुष्य	३	२०	अभिजित	३
७	अश्लेषा	६	२१	श्रवण	३
८	मघा	४	२२	धनिष्ठा	५
९	पूर्वा	२	२३	शततारिका	१११
१०	उत्तरा	२	२४	पूर्वा भाद्रपदा	२
११	हस्ति	५	२५	उत्तरा भाद्रपदा	२
१२	चित्रा	१	२६	रेवती	३२
१३	स्वाती	१	२७	अश्विनी	५
१४	विशाखा	४	२८	भरणी	३

अट्ठाईसों नक्षत्रोंके तारे	२४१
प्रत्येक तारेके तारे	११११२
सम्पूर्ण तारे	२४१×१११२=२६७९९२

जिनवाणीके सात भंग।

दर्व खेत काल भाव अपने चतुष्टै अस्त,
परके चतुष्टैसैं न नासत दरव हैं ॥
आपसैं है परसैं न एक समै अस्तनास,
ज्यौंके त्यौं न कहे जाहिं अस्त अवतव हैं ॥
अस्त कहैं नासका अभाव अस्त अवतव,
नास्त कहैं अस्त नाहिं नास अवतव हैं।
एकठे कहे न जाहिं अस्तनासअवतव,
स्यादवादसेती सात भंग सधैं सव हैं ॥१०१॥

अर्थ—प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य क्षेत्र काल भावरूप चतुष्टयसे अस्तिरूप है, इसलिये उसे स्यात् (कथंचित्) अस्तिरूप कहते हैं और वही पदार्थ परके द्रव्यक्षेत्रकाल भावरूप चतुष्टयसे 'नहीं' है, इसलिये उसे स्यात् नास्तिरूप कहते हैं। आपके चतुष्टयसे वह है और परके चतुष्टयसे नहीं है, इसप्रकार ये दोनों गुण एक ही वस्तुमें एक ही समय हैं, इसलिये उसे स्यात् अस्तिनास्तिरूप कहते हैं। पदार्थका स्वरूप एकान्तसे ज्योंका त्यों अर्थात् एक साथ परस्पर विरुद्ध अस्तित्व नास्तित्वादि धर्मोंका समुदाय कहा नहीं जा सकता है। जिस समय अस्ति कहते हैं, उस समय नास्तिका कहना संभव नहीं होता है और जिस समय नास्ति कहते हैं उस समय अस्तित्वका कहना नहीं

बन सकता है इसलिये उसे स्यात् अवक्तव्य कहते हैं। पदार्थ स्वचतुष्टयसे तो अस्तिरूप है और एक साथ अस्तिनास्तिरूप होनेसे (चौथे भंगके समान) कहा नहीं जा सकता है, इसलिये स्यात् अस्ति अवक्तव्य है। इसी तरह परचतुष्टयसे नास्तिरूप है तो भी एक साथ अस्ति-नास्तिरूप पूर्ण स्वरूप कहनेमें नहीं आ सकता है, इसलिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य है। और पदार्थ अपने तथा परके चतुष्टयसे अस्तिनास्तिरूप है; परन्तु एक साथ अस्तिनास्तिरूप कहा नहीं जा सकता है, इसलिये स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य है। इस तरह ये सातों भंग स्यादवादसे सधते हैं।

पदार्थ अनेकान्तस्वरूप है। स्यात् वा कथंचित् शब्दका आश्रय लिये विना किसी भी पदार्थका यथार्थ स्वरूप नहीं कहा जा सकता है। अमुक पदार्थ 'ऐसा ही है' इस प्रकार कहनेसे पदार्थस्थित अन्य धर्मोंका सर्वथा निषेध होता है इसलिये ऐसा कहना ठीक नहीं; किन्तु 'ऐसा भी है' इस प्रकार कहा जा सकता है क्योंकि इससे अन्य धर्मोंका सर्वथा अभावसिद्ध नहीं होता फिर भी प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अपेक्षासे कहा जाता है। जहां अपेक्षा नहीं है, वहीं मिथ्या है (असत्य है)।

सर्वज्ञके ज्ञानकी महिमा।

जीव हैं अनंत एक जीवके अनंत गुण,
एक गुणके असंख परदेस मानिए।

एक परदेसमैं अनंत कर्मवर्गना हैं,
एक वर्गना अनंत परमानु ठानिए ॥
अनुमैं अनंत गुण एक गुणमैं अनंत,
परजाय एककै अनंत भेद जानिए ।
तिनितैं हुए अनंत तातैं होंहिंगे अनंत,
सब जानै समैमाहिं देव सो वखानिए ॥१०२॥

अर्थ—संसारमें अपनी अपनी जुदी सत्ताको लिये हुए अनन्त जीव हैं और प्रत्येक जीवके अनन्त गुण हैं। यद्यपि जीवके गुणोंकी संख्या जीवराशिसे अनन्त गुणी है, तो भी आलापसे वह अनन्त ही कही जाती है। इन गुणोंमेंसे एक एक गुणके असंख्यात असंख्यात प्रदेश हैं। क्योंकि जीव असंख्यातप्रदेशी है और निश्चयनयसे जीव और गुणमें भेद नहीं है—वे अभिन्न हैं। जीवके उक्त एक एक प्रदेशमें अनन्त कर्मवर्गणाएँ हैं—प्रदेशोंके साथ एकावगाहरूप हो रही हैं और एक एक कर्मवर्गणामें अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु हैं। क्योंकि अनन्त परमाणु मिले विना कर्मरूप वर्गणाएँ नहीं बन सकती हैं। इन सब परमाणुओंमें प्रत्येक प्रत्येक परमाणुके अनन्त अनन्त गुण हैं और एक एक गुण अनन्त अनन्त पर्यायरूप परिणमन करता है तथा एक एक पर्यायके अनन्त अनन्त भेद हैं। इन सब पर्यायोंके अनन्त अनन्त भेद वर्तमानमें हैं, इनसे अनन्तगुणे पूर्वके अनन्त कालमें हो गये हैं

और उनसे अनन्तगुणे अगामी कालमें होवेंगे। इन सबको एक समयमें जो जानता देखता है, उसे सर्वज्ञदेव कहते हैं।

कविका अन्तिम कथन।

छप्पय।

चरचा मुखसौं भनैं, सुनैं प्रानी नहिं कानन।
केई सुनि घर जाहिं, नाहिं भाखैं फिरि आनन॥
तिनिकौ लखि उपगार, सार यह सतक बनाई।
पढ़त सुनत ह्वै बुद्ध, सुद्ध जिनवानी गाई॥
इसमैं अनेक सिद्धांतकौ, मथन कथन द्यानत कहा।
सबमाहिं जीवकौ नाव है, जीवभाव हम स-
रदहा॥ १०२॥

अर्थ—शास्त्र सभादिमें मुंहसे यदि चर्चा की जाती है-शास्त्रकी बातें सुनाई जाती हैं, तो बहुतसे प्राणी कान लगाकर नहीं सुनते हैं और बहुतसे सुनकर घर चले जाते हैं-व्यापार धंधोंमें फँस जाते हैं, इसलिये फिर कभी मुंहपर भी उसे नहीं लाते हैं। ऐसे लोगोंका उपकार देखकर-यह समझकर कि इससे उनका लाभ होगा-वे इसे कंठ कर लेंगे, तो चरचाको नहीं भूलेंगे-यह साररूप चरचाशतक बनाया है। इसके पढ़ने सुननेसे बुद्धि बढ़ेगी। इसमें शुद्ध जिनवाणी कही गई है। इस चरचा शतकमें

द्यानतराय कविने (मैंने) अनेक सिद्धान्तोंके कथनका मथन करके अर्थात् बहुतसे ग्रन्थोंका सार लेकर वर्णन किया है। इस सारे ही ग्रन्थमें जीवका नाम है अर्थात् इसके प्रत्येक पद्यमें जीवपदार्थका अथवा उसके सम्बन्धी भावों, कर्मप्रकृतियों, योनियों, नरक स्वर्गादिकोंका वर्णन है। जीव भावका अर्थात् जीवतत्त्वका मैंने श्रद्धान किया है।

परिशिष्ट।

पृष्ठ ११२–क्षेत्रपरावर्तनका खुलासा स्वरूपः—

कोई सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव जघन्य अवगाहनाके शरीरको धारण करके मेरुके नीचे लोकके मध्यभागमें इसप्रकार जन्म धारण करे कि जिसमें उक्त जीवके मध्यके आठ प्रदेश लोकके मध्यके आठ प्रदेशोंमें आ जायँ। इसके बाद आयु पूर्ण होनेपर मर जाय। फिर संसारमें भ्रमण कर किसी कालमें वहीं उसी प्रकार जन्म ले, मरकर फिर संसारमें भ्रमणकर वहीं उसी प्रकार जन्म ले। इस प्रकार भ्रमण करता करता असंख्यात बार वहीं उसी प्रकार जन्म ले। इसके बाद एक प्रदेश आगेके क्षेत्रमें जन्म ले। इसी प्रकार श्रेणीबद्ध क्रमसे एक एक प्रदेश बढ़ता हुआ लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेशोंमें जन्म ले। क्रमरहित प्रदेशोंमें जन्म लेना इसमें शामिल नहीं होता। इस तरह जितने कालमें वह जीव अपने जन्मद्वारा लोकाकाशके सम्पूर्ण प्रदेश पूरे करे, उतने कालको उनका एक क्षेत्रपरावर्तनकाल समझना चाहिए।

पृष्ठ ११२–पुद्गलपरावर्तनका खुलासा स्वरूपः—

इसके दो भेद हैं एक नोकर्मपुद्गलपरावर्तन और दूसरा कर्मपुद्गलपरावर्तन। औदारिक वैक्रियक आहारक इन तीन शरीरों और छह पर्याप्तियोंके योग्य पुद्गल वर्गणाओंको नोकर्म और ज्ञानावरणादि कर्मोंकी पुद्गलवर्गणाओंको कर्म कहते हैं। यह जीव प्रत्येक समयमें कर्म नोकर्मवर्गणाओंको ग्रहण करता करता रहता है। मान लो कि किसी जीवने किसी एक समयमें जो नोकर्मवर्गणायें ग्रहण कीं वे दूसरे तीसरे आदि समयोंमें निर्जीर्ण हो गईं। अब उन वर्गणाओंकी जितनी संख्या थी और उनमें जितना स्निग्ध रूक्ष वर्णगन्धत्व तथा उनका तीव्र मध्यम मन्द परिणाम था, कालान्तरमें वे ही वर्गणायें उतनी ही संख्या और परिणामको लिये जब यह जीव ग्रहण करेगा, तब एक नोकर्मपुद्गलपरावर्तन होता है।

इसी प्रकार किसी जीवने किसीसमयमें ज्ञानावरणादि कर्मोंके योग्य पुद्गलवर्गणा ग्रहण कीं और वे द्वितीय तृतीयादि समयोंमें झड़ गईं। अब उन वर्गणा-

ओंकी भी जितनी संख्या और जितना उसमें स्निग्ध रूक्ष वर्ण ग
उनका तीव्र मन्द मध्यम परिणाम था कालान्तरमें जब वह जीव उ
संख्या और परिणामको लिए उन्हीं वर्गणाओंको ग्रहण करेगा तब ए
पुद्गलपरावर्तन गिना जायगा। बीचमें अगृहीत मिश्र या मध्यगृहीत
बार ग्रहण करेगा परन्तु वह इसकी गिनतीमें न आयगा।

—धर्मप्रश्नोत्तर।

पृष्ठ १३० के ८९ नम्बरके पद्यका जो अर्थ किया गया है उसमें जो १६ दृष्टान्त दिये गये हैं वे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलनके भेदोंके बतलाये गये हैं; परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। वे दृष्टान्त तीव्रता मन्दताकी अपेक्षा हैं सम्यक्त्व या चारित्र घातनेकी अपेक्षा नहीं। अर्थात् यह नहीं कि जो क्रोध पत्थरकी लकीरके समान होता है वह अनन्तानुबन्धी क्रोध है और जो हलकी लकीरके समान होता है वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है; अथवा जो पाषाणके खंभके समान होता है वह अनन्तानुबन्धी मान है और जो हड्डीके खंभके समान होता है वह अप्रत्याख्यानी है; किन्तु तीव्रता मन्दताकी अपेक्षा क्रोध मान माया और लोभ इन चारों कषायोंके (चाहे वे अनन्तानुबन्धीसम्बन्धी हों चाहे प्रत्याख्यानी आदि सम्बन्धी) चार चार दृष्टान्त दिये हैं और इस तरह इन चारोंके १६ भेद बतलाये हैं। स्वाध्याय करते समय उक्त पद्यके अर्थमें इतना संशोधन कर लेना चाहिए।